रामानुजाब्द- १०००

।।श्रीमते रामानुजाय नमः।।

पराङ्कुशाब्द-१५२

वैदिक-वाणी

अनन्तश्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज

अवतरण : श्रीसंवत् १९२१, फाल्गुन-शुक्ल-त्रयोदशी ● वैकुण्ठगमन: श्रीसंवत् २०३६, फाल्गुन-कृष्ण-नवमी

आथर्वणं सुमनसां प्रवरं महान्तं कौण्डिन्यवंश मनघं करुणालयन्तम् ।
राजेन्द्रदेशिकपदे विनिवेशयन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।

वर्ष-29, त्रैमासिक प्रकाशन, अंक-1

श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्

हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

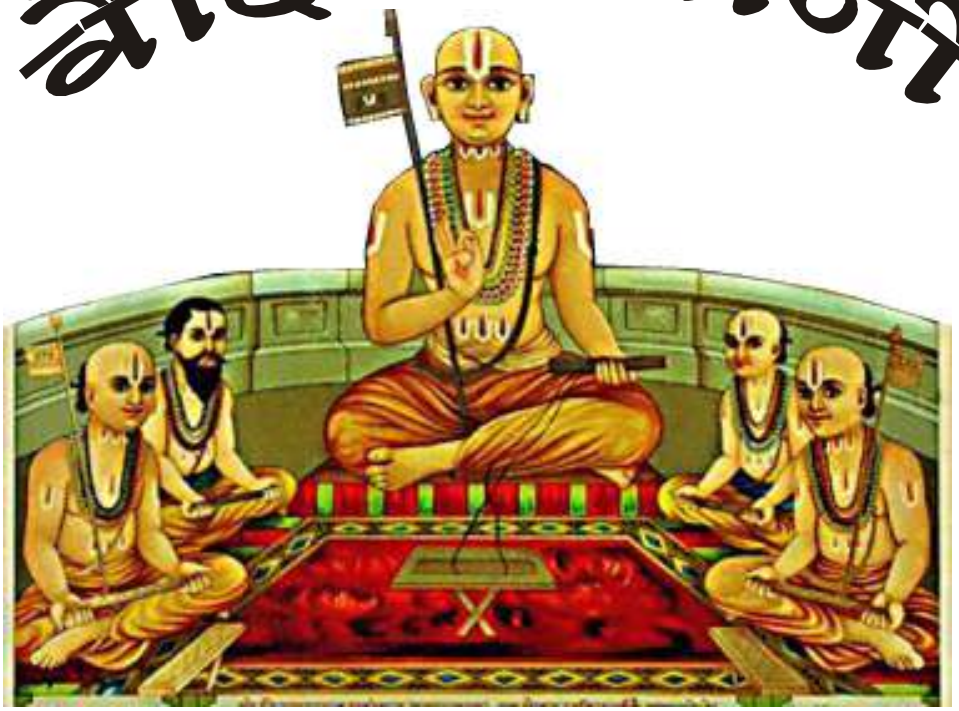

वर्ष- २९ सन्- २०१७ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- १ रामानुजाब्द ९९८ त्रैमासिक प्रकाशन

अवबोधितवानिमां यथा मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्य भोग्यतां भगवन् भक्तिमयि प्रयच्छ मे ।।

अर्थात् हे भगवन्! जैसे आपने स्वयं ही मेरे भीतर 'मैं चिरकाल से तुम्हारा ही हूँ'–यह भाव जगा दिया है; वैसे ही अब कृपा करके मुझे वह भक्ति प्रदान करें, जिसके द्वारा मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का भोग करने में समर्थ न हो सकूँ ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

क्रम सं०	विषय	पृ० सं०
१.	वैदिक-वाणी	३
२.	रामायण में क्या है?	४
३.	मानस के चुने हुए विशेष प्रकरण—	
	(१) गिरा अरथ..... ७	(२) ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि... ८
	(३) पुलक बाटिका बाग.... ९	(४) जेहि अग बधेउ..... ११
	(५) बिधि हरिहर तप..... १२	(६) जाके सुमिरन ते..... १३
	(७) लक्षणधाम राम..... १३	(८) विनयप्रेम वश..... १४
	(९) अनुरूप वर..... १४	(१०) मुदित अवध..... १६
	(११) मिलत महा..... १७	(१२) सूयोदन सुरभी..... १८
	(१३) चरण कमल..... १९	
	(१४) भरत जी के साथ भगवान् का अटूट प्रेम क्यों?	२०
	(१५) भरत जी के प्रति लखन जी राजमद की बात क्यों बोले?	२१
	(१६) जटायु जी की भगवत् सेवा	२२
	(१७) सुन्दर काण्ड के कुछ प्रसङ्ग—	(१) जामवन्त के वचन..... २४
		(२) तब देखी मुद्रिका २५
	(१८) शिव द्रोही मम..... २६	(१९) जौ जनतेउं बन..... २७
	(२०) सुत वित नारी..... ३०	
	(२१) दशरथ जी को मोक्ष नहीं स्वर्ग मिला	३१
	(२२) औरों एक गुप्त..... ३२	(२३) मोह न नारि..... ३४
	(२४) रघुवंशभूषण चरित... ३५	
४.	परमाचार्य जी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म पर लिखित भजन (सोहर)	३८, ३९
५.	विविधमुहूर्त्ता	४०

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

इस धराधाम पर भगवान् श्रीहरि का अवतार सनातन सत्य है। श्रीभगवान् ने अनेक अवतार धारण किया है, उन्हीं अवतारों में रामावतार भी है। रामावतार पूर्णावतार है, फिर भी अज्ञानजन्य दोष के कारण समाज में अनेक प्रकार की मान्यताएँ भगवान् श्रीराम के विषय में प्रचलित हो गयी है जिसके अन्तर्गत कुछ लोग भगवान् श्रीराम को प्राकृत पुरुष, देवता, ब्रह्म आदि स्वरूपों में उन्हें स्वीकार करते हैं। प्रभु श्रीराम को उपर्युक्त स्वरूपों में स्थापित करने वाले अधिकांश लोग रामचरित मानस के पङ्क्तियों का सहारा लेते हैं; क्योंकि वर्तमान समय में हिन्दी भाषा में रचित मानस का प्रचार-प्रसार अन्य रामायणों से ज्यादा है। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित मानस परम्परागत ज्ञान का संवाहक ग्रन्थ है। मानस का पाठ करना जितना ही सहज है उतना ही कठिन उसका रहस्य जानना है। यद्यपि सम्पूर्ण मानस प्रभु श्रीराम के सुन्दर कथाओं से परिपूर्ण है, तथापि कुछ प्रसङ्ग अत्यन्त कठिनता से बोधगम्य होने वाले हैं। उन प्रसङ्गों के रहस्यों को समझने के लिए मानस के अतिरिक्त अन्यान्य सद्ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य माना जाता है। वर्तमान समय में संस्कृत पठन-पाठन का सर्वथा अभाव है और सभी सद्ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही निबद्ध है। ऐसी स्थिति में संस्कृत भाषा के सामान्य ज्ञान से विभूषित लोगों ने मानस के कतिपय प्रसङ्गों के पद्यों को उद्धृत कर अपने अत्यन्त सामान्य ज्ञान के अनुसार ज्ञात अर्थ प्रस्तुत कर समाज को दिग्भ्रमित करते हैं।

भगवद् पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने उन्हीं प्रसङ्गों को निगम-आगम, पुराण आदि से सम्पुष्ट अर्थ का प्रकटन कर जो पुस्तक का प्रणयन किया है, उसका नाम 'मानस शङ्का समाधान' है। 'मानस शङ्का समाधान' में भगवद् पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने प्रभु श्रीराम के अवतार के हेतु, चतुर्भुज स्वरूप, चारों भाइयों के भगवान् श्रीहरि के आयुधों के साथ सम्बन्ध, भगवान् श्रीहरि का अवतार, श्रीराम जी की भक्ति में शिवजी की कृपा या भक्ति की आवश्यकता नहीं! आदि ऐसे सभी प्रसङ्गों का सप्रमाण व्याख्यान कर भगवान् श्रीहरि की लीलाओं के रहस्यों का भाव स्पष्ट किया है। विशेष ध्यातव्य यह है कि परमाचार्य जी महाराज की दिनचर्या अत्यन्त व्यस्त रहती थी। वे स्वयं को किसी न किसी व्याज से भगवान्, भागवत एवं वैष्णवों के चिन्तन में सदैव संलग्न रखते थे। प्रत्यक्ष रूप से सांसारिक कार्यों का सम्पादन करते समय भी भगवान्, भागवत एवं वैष्णवों का ही स्मरण किया करते थे, उसी स्मरण में ही उनकी भावना रचना के रूप में अवतरित हुआ करती थी और जो कुछ भी सामने उपलब्ध हुआ उसी पर उसे अङ्कित कर देते। फलस्वरूप आपकी अनेक कविताएँ (भजन) का प्रकाशन नहीं हो सका। प्रकृत अङ्क में भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म पर लिखित भजन (सोहर) का दुर्लभ पाण्डुलिपि को यथावत् प्रकाशित किया जा रहा है। यह परमाचार्य जी महाराज की मूल हस्तलिपि का दर्शन भक्तों को विशेष आह्लाददायक होगा।

पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज की आज्ञानुसार वैदिक-वाणी में श्री परमाचार्य जी महाराज द्वारा रचित ग्रन्थों का खण्डशः प्रकाशन करने की योजना का शुभारम्भ

(शेष पृष्ठ ६ पर...)

रामायण में क्या है?

भगवान् नारायण के अनन्त गुण रूप वैभव अवतार एवं विभूतियों की तरह उनके अनन्त नाम एवं लीलायें हैं। रामावतार उन्हीं अनन्त अवतारों में से एक है कल्प भेद से इनके चरित्र में कुछ अन्तर मिलता है जैसे–१. परशुराम जी का कभी विवाह के पूर्व तथा कभी बाद में मिलना। २. अहल्या का कभी जनकपुर के पास तो कभी बक्सर के पास रहना आदि भगवान् के चरित्रों को ब्रह्माजी प्रचार करते हुए महादेव जी तथा नारद जी को सुनाते हैं। नारद जी से वाल्मीकि जी भगवान् के चरित्र सुनकर चौबीस हजार श्लोकों में रामायण की रचना करते हैं तथा समयानुकूल लव कुश को पढ़ाते हैं। लय में गाकर उन दोनों ने मुनियों के बीच इसे लोकप्रिय बनाया और श्रोताओं ने कहा कि बीती हुई कथायें भी प्रत्यक्ष घटती जैसी लगती हैं—

'चिरं निवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्' ।

रामायण की अनेकों व्युत्पत्तियाँ हैं—**(१) 'रामः ईयते प्राप्यते अनेन'** अर्थात् राम जिससे मिल जायें वह साधन प्रेम है और वही रामायण है।

(२) 'रामस्य अयनं' अर्थात् राम जहाँ प्राप्त हों वह रामायण है। रामजी की प्राप्ति के लिये रामायण का प्रेमपूर्वक अध्ययन साधन है। रामायण द्वारा केवल रामजी का चरित्र ही नहीं समझना चाहिए, बल्कि। रामजी श्रीनिवास हैं। इसलिये रामायण लक्ष्मी यानी सीताजी के चरित्र का भी बोध कराता है—

'सीतायाः चरितं महत्' (वा०रा० ४.१७)।

श्रीरामानुज स्वामी के अग्रगण्य शिष्य श्रीकुरेश स्वामी के पुत्र श्री पराशर भट्ट स्वामी ने लक्ष्मी जी पर 'श्रीगुणरत्नकोश' स्तुति लिखी है उसके श्लोक १४ में दिया है—**'श्रीमद्रामयणमपि परं प्रणिति त्वच्चरित्रे'** अर्थात् वाल्मीकि रामायण भी आपके चरित्र का गान करता है। महाभारत रामायण एवं भागवत के अध्ययन के लिये एक प्रचलित कहावत है—

प्रातः द्यूतप्रसङ्गेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः।
रात्रौ चोरप्रसङ्गेन कालो गच्छति धीमताम्।।

अर्थात् प्रातः महाभारत का कृष्ण प्रसङ्ग तथा दोपहर सीताजी का चरित्र यानी रामायण एवं सायंकाल कृष्णचरित्र यानी भागवत के अध्ययन में बुद्धिमान लोग समय लगाते हैं। रामजी के अवतार के पीछे अनेक कारण हैं जैसे–मनु शतरूपा को वरदान या देवताओं की रक्षा आदि; परन्तु सीताजी के अवतार के पीछे कोई कारण नहीं है। वे तो निर्हेतुकी कृपा के कारण ही पृथ्वी से प्रकट हुईं। अयोध्या का राजसुख छोड़कर रामजी के साथ जंगल गयीं तथा राक्षसों को सुधारने हेतु लङ्का गयीं। रामजी के चरित्र से इनके चरित्र की यह विशेषता है। मानस के प्रारम्भ के मङ्गलाचरण में कहा गया है—**'.... सीतारामगुणग्राम....'** अर्थात् रामायण सीताजी एवं रामजी दोनों के गुणों का संग्रह है।

(३) 'रामस्य अयनं भक्तजनः तस्य चरितं रामायणम्' अर्थात् भक्तों के हृदय में रामजी बसते हैं और उन्हीं भक्तों का चरित्र रामायण है। तुलसीदास जी ने भी मानस में ऐसे भक्तों के लक्षण को बताया है और उनके हृदय में भगवान् के बसने की बिनती की है—

निदरहिं सिन्धु सरिस सर बारी।
रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।।
जिनके हृदय सदन सुखदायक।
बसहु लखन सिय सह रघुनायक।।

* * *

जाही न चाहिये कबहुँ कछु तुम सन सहेज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेह।।

(अयो० दोहा १२७ से लेकर १३१ तक)

सागर तट पर विभीषण जी की शरणागति के समय भगवान् ने स्वयं कहा है—

तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे ।
धरेउ देह नहीं आन निहोरे ।।

(सुन्दर० ४७-४)

भरत जी के बारे में कहा है कि रामजी को संसार भजता है; परन्तु वे भरत जी को भजते हैं—

जग जपु राम राम जपु जेहि ।

(अयोध्या० २१७.४)

अर्थात् भगवान् भक्तों को अपना बनाकर उनके हृदय में बसते हैं। माता सुमित्रा जी की रामजी के प्रति भक्ति लक्ष्मण को कही हुई बात से मिलती है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजं ।

(वा०रा०, अयो० ४०.९)

अर्थात् राम जी को पिता दशरथ तथा जानकी जी को मुझे यानी माँ समझो। शृङ्गवेरपुर में रामजी लक्ष्मण जी एवं सीताजी का अयोध्या लौटने से मना कर देने पर सुमन्त जी की दशा से उनकी भक्ति का आभास होता है—

'भये विकल जनु फणिमनिहीना ।
...नयन न सूझ सुनै नहीं काना ।

(अयो० ९८.२)

(४) 'रामः अयनं यस्य' अर्थात् जिन सबों के आधार राम हैं उन सबों का बोध रामायण से होता है। भगवान् विभीषण से कहते हैं कि वाल्मीकि, भरद्वाज, अत्रि, अनुसूया, सरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, कुम्भज, जटायु, शबरी, हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद, मनु, शतरूपा इत्यादि जैसे भक्तों को वे अपने हृदय में रखते हैं—

अस सज्जन मम उर वस कैसे ।
लोभी हृदय बसत धन जैसे ।।

(सुन्दर० ४७.४)

(५) रामायण से द्वयमन्त्र—**'श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये' । 'श्रीमते नारायणाय नमः'** व्यक्त होता है। बालकाण्ड में सीता राम विवाह से लक्ष्मी के साथ होने यानी 'श्रीमत्' का बोधक है। अयोध्या का गुण वर्णन 'नारायण' पद के लिये है। अरण्य काण्ड में भगवान् के स्वरूप के वर्णन से उनके विग्रह यानी 'चरणौ' का बोध होता है। किष्किन्धा एवं सुन्दर से 'शरणम्' का बोध होता है। लङ्का काण्ड से 'प्रपद्ये' का बोध होता है तथा उत्तर काण्ड से मन्त्र के उत्तरार्द्ध 'श्रीमते नारायणाय नमः' का बोध होता है।

वाल्मीकि रामायण के विभिन्न प्रसङ्गों से भगवान् के शरण्य गुण का बोध होता है। **'त्वं गतिः परमो देव सर्वेषां नः परंतप'** देवताओं ने शरणागति ली। लक्ष्मण जी **'स भ्रातुश्चरणौ गाढं....सीतामुवाचाति-यशा राघवञ्च महाव्रतम्** (अयो० ३१.२)।

भगवान् का चरण पकड़ कर सीताजी से कहते हैं जो पुरुषकार शरणागति का बोधक है यानी सीताजी का अनुमोदन मिलता है। त्रिजटा जानकी जी का शरण लेती है; क्योंकि रामजी से राक्षसों को भय है—

'अभियाचमानं वैदेहीमेतद्धि....' ।

(सुन्दर० २७.४१)

भरत जी भगवान् को मनाने के लिये कुश पर पड़कर अनशन करते हैं—**'शेष्ये पुरस्ताच्छालाया...** (अयोध्या० १११.१४)। **'...यावन्मे न प्रसीदति'** (अयो० १११.१३)। जयन्त एवं दण्डकारण्य में मुनियों की रक्षा का प्रसङ्ग शरण्य गुण का प्रकाशक है। सुग्रीव अञ्जलीबद्ध हो लक्ष्मण जी को मनाते हैं–'अञ्जलीबद्धता' शरणागति बोधक है। विभीषण पुत्र पत्नी को छोड़कर रामजी के पास आ गये। सर्वस्व त्यागने से ही शरणागति मिलती है। लक्ष्मण जी ने वनगमन के पूर्व कहा सभी अवस्थाओं में कैङ्कर्य करूँगा—**'अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते'** (अयो० ३१.२७)। लक्ष्मण जी ने जीव

के शेषत्व भाव को बताया—

कुरुष्व मामनुचरं वैध्मर्य नेह विद्यते ।

(अयो० ३१.२४)

हमें अपना अनुचर बनाइये इसमें कोई धर्म हानि नहीं है। वसिष्ठ जी को भरत ने जीव की परतन्त्रता का बोध कराया यह कहकर कि यह राज्य तथा मैं दोनों रामजी का हूँ—

राज्यं च अहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ।

(अयो० ८२.१२)

(६) अर्थपञ्चक का ज्ञान—रामजी से पर स्वरूप। लक्ष्मण से जी स्व स्वरूप। शरणागति से उपाय स्वरूप। विभीषणादि के कैङ्कर्य से फलस्वरूप। रावणादि के व्यवधान से विरोधी स्वरूप का ज्ञान मिलता है।

(७) अनन्य अकिञ्चनता—रक्षा नहीं कर सके देवगण रावण की, माता-पिता जयन्त की, भाई-विभीषण की, दशरथ पुत्र की, अत: केवल एक भगवान् ही रक्षक हैं। परमात्मा की शरणागति के लिये पुरुषकार यानी अनुमोदन करने वाले की आवश्यकता होती है। अनुमोदन करने वाले में दया तथा भगवान् पर स्वाभाविक परतन्त्रता का पूर्ण आभास एवं भगवान् ही में अनन्यभाव के गुण होने चाहिये। ये सभी गुण सीताजी में हैं। पञ्चवटी से लङ्का तक उन्होंने दया गुण का प्रकाश किया है। गर्भावस्था में एक दिन वाटिका में विहार करते हुए भगवान् ने सीताजी से उनकी ईच्छा जाननी चाही—**'किमिच्छिसि वरारोहे....'** (वा०रा० ४२.३२)। सीताजी ने कहा कि कम से कम एक रात कन्द मूल फल खाने वाले तपस्वियों की भूमि में रहना चाहती हूँ—**'तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव...अपि एक रात्रिं काकुत्स्थ निवेसयं तपोवने'** (वा०रा०, उ० ४२.३३-३५)। इससे परतन्त्रता गुण का आभास होता है। नैमिषारण्य यज्ञ में रामजी द्वारा पूछने पर सीताजी पृथ्वी से स्थान माँगती हैं एवं धरती के फटने से एक दिव्यसिंहासन के प्रकट होने पर उस पर विराजमान हो पृथ्वी में समा जाती हैं—**'यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये, तथापि मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति.....भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्'** (वा०रा०, उ० ९७.१४-१७)। यह सीताजी के अनन्यार्हत्व को प्रकाशित करता है। संश्लेष या विश्लेष में सतत लक्ष्मी जी जीव का कल्याण ही चाहती हैं। इसी विषय का प्रतिपादन रामायण करता है।

पृष्ठ संख्या 3 का शेष...

...मानस शङ्का समाधान से किया जा रहा है। इस कार्य को मूर्त्तरूप देने का श्रेय श्रीकृष्णाचारी (इंजिनियर साहब) को जाता है। श्रीकृष्णाचारि (इंजिनियर साहब) सद्गृहस्थ सन्त हैं। आपने भौतिकता को छोड़कर अध्यात्म का अनुशरण किया है। विदेश की प्रतिष्ठित नौकरी का त्याग कर भगवद् गुणानुवाद द्वारा जीवन यापन करना आपने अपना लक्ष्य बना लिया है।

इसी क्रम में वेदान्त का अध्ययन, दक्षिण भारत में प्रवास कर तमिलभाषा में निबद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थों का अध्ययन, महाभागवतों पर अनुसन्धान आदि कार्य आप कर रहे हैं। उसी अनुसन्धान में श्रीकृष्णाचारी जी ने परमाचार्य जी के जीवन दर्शन पर गम्भीर शोधकर मानस शङ्का समाधान ग्रन्थ का सार तत्त्व निकाला है। उनका अनुसन्धान भगवद् पराङ्कुशाचार्य जी महाराज के शतप्रतिशत भावानुरूप है। अत: स्वामी जी के पूर्वयोजना को मूर्त्तरूप प्रदान करने की दिशा में प्रथम सोपान स्वरूप श्रीकृष्णाचारी (इंजिनियर) का यह कार्य सर्वथा स्तुत्य है।

मानस के चुने हुए विशेष प्रकरण

(1)

गिरा अरथ जलबीचि सम कहियतभिन्न न भिन्न ।
बन्दौ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।। (मानस बा॰ 18)

इस दोहे में सीताजी एवं रामजी को भिन्न एवं अभिन्न यानी अलग-अलग तथा एक बताया गया है। 'गिरा यानी वाणी' स्त्रीलिंग वाचक है तथा 'अर्थ यानी तात्पर्य 'पुल्लिङ्ग है जो परस्पर सीताजी एवं रामजी के लिये प्रयुक्त हुआ है। पहले माँ की पूजा के बाद ही पिता की पूजा करते हैं। उपासकों के लिये सीताजी माता हैं तथा रामजी पिता हैं।

दोनों में भिन्नता है कि रामजी से सीताजी छः वर्ष छोटी हैं। रामजी अयोध्या के सीताजी जनकपुर की। सीताजी वशवर्तिनी तथा रामजी सर्वस्वतन्त्र। सीताजी पृथ्वी में प्रवेश कीं; परन्तु रामजी विमान से गये। इसी तरह से गिरा एवं अर्थ में भी भिन्नता है। 'गिरा' वाचक है तथा 'अर्थ' वाच्य है। जैसे सूर्य वाचक है तथा प्रकाश वाच्य। मुँह से केवल वाचक ही प्रकट होता है वाच्य नहीं। अग्नि कहने से मुँह नहीं जलता जबकि अग्नि वाचक है एवं उसकी उष्णता वाच्य है।

'जल' एवं 'बीचि' यानी जल एवं उसके तरङ्ग कहकर दोनों की भिन्नता को दूर किया गया है। जल पुल्लिङ्ग रामजी के लिये तथा बीचि स्त्रीलिङ्ग सीताजी के लिये प्रयुक्त है। सीताजी ने हनुमान जी से अशोकवाटिका में कहा—**'अनन्याराघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा'** (वा॰रा॰, सुन्दर॰ २१.१६)। इसी तरह से रामजी ने युद्ध के पश्चात् सीताजी की अग्नि परीक्षा के उपरान्त कहा—**'अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा'** (वा॰रा॰, युद्ध॰ १२०.१९)। वनगमन के पूर्व रामजी से सीताजी कहती हैं—

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई ।
कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ।।
(मानस, अयोध्या॰ ९६.३)

अतः दोनों की अभिन्नता सिद्ध है। भगवान् वैकुण्ठ छोड़कर वाराहादि रूपों में जनकल्याण हेतु आते हैं, वैसे ही लक्ष्मी जी भी वैकुण्ठ त्याग कर धरती से प्रकट होती हैं। राम एवं सीता दोनों एक-दूसरे के परस्पर आधार हैं। भगवान् को 'श्रीनिवास' कहते हैं यानी **'श्रियाः निवासः श्रीनिवासः'** या **'श्रियां निवासो यस्य सः श्रीनिवासः'** से दोनों में अभिन्नता स्पष्ट है। उपर्युक्त दोहे में सीताजी का नाम पहले कहने से शरणागति के लिए **'पुरुषकार स्वरूप लक्ष्मी'** की महत्ता को आलोकित किया गया है। **'बन्दौ सीतारामपद'** से चरण एवं अन्तःकरण में एकता दिखायी गयी है। किसी के चरण पकड़ते ही उसका हृदय द्रवित हो जाता है। सीताराम जी के चरण पकड़ने पर उनका हृदय पिघलेगा ही। **'परमप्रिय खिन्न'** में 'खिन्न' अकिञ्चन के लिये प्रयुक्त है यानी जिसके पास भगवान् को छोड़कर कोई अन्य उपाय नहीं है। एक नवजात शिशु का आधार उसकी माँ है। यह शिशु की परगत शरणागति का उदाहरण है। ज्ञानी एवं प्रौढ़ स्वगत शरणागति वाले हैं अर्थात् वे अकिञ्चन नहीं हैं—**'परम अकिञ्चन प्रिय हरि केरे'** (वा॰रा॰ १६०.२)। **'जेहि दीन पियारे वेद पुकारे'** (वा॰रा॰ १८५.छन्द ४)। श्रीयामुनाचार्य स्वामी ने स्तोत्ररत्न आलवंदार श्लोक २२ में कहा है—**अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वद्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ।**

(2)

ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि वरणहि तत्त्वविभाग ।
कहहिं भक्ति भगवंत की संयुत ज्ञानविभाग ।। (मानस बा॰ 44)

प्रसङ्ग प्रयागराज में मकर स्नान के समय भगवान् की कथा का है। दोहा के शब्द **'ब्रह्मनिरूपण', 'धर्मविधि', 'तत्त्वविभाग', 'भक्ति भगवंत की'** तथा **'ज्ञानविभाग'** के पृथक्-पृथक् विवेचन दिये गये हैं। ब्रह्म यानी ईश्वर हैं या नहीं हैं या हैं तो उनके लक्षण क्या हैं आदि पर विचार करना ही ब्रह्म-निरूपण है। सांख्यशास्त्र प्रकृति को ही ईश्वर मानता है। मीमांसा शास्त्र के अनुसार कर्माधीन ही सबकुछ हुआ करता है। व्याकरण शास्त्र से आदिअन्त रहित नित्य शब्द ही ब्रह्म है। न्यायशास्त्र के अनुसार भूमि, वायु, अग्नि एवं जल से ही चैतन्य का निर्माण होता है। स्वर्गादि एवं ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है। चार्वाक सिद्धान्त के अनुसार मोक्षादि कुछ नहीं है। वैदिक कर्म मूर्ख एवं उद्योगहीन पण्डितों के जीविका अर्जन के लिये है। पञ्चदेव के उपासक ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश एवं सूर्य को ईश्वर मानते हैं। श्रुति कहती है कि जिससे सभी जीवों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है वह ब्रह्म है। जिस एक के ज्ञान से सबकुछ ज्ञात हो जाता है वह ब्रह्म है। जो सर्वज्ञ सर्वव्यापक है वह ब्रह्म है आदि आदि।

ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थो नृहरिः पुरुषोत्तमः ।
नारायण परब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ।।

अर्थात् नारायण में ब्रह्म के सभी लक्षण मिलते हैं। नारायण ही रामजी बनकर आये तथा वेद वाल्मीकि रामायण बनकर आये—**वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।**

'धर्मविधि' में अनेक मत हैं। जो इस लोक में सर्वोदय करे एवं परलोक में कल्याण करे वह धर्म है। जो वेद, स्मृति में लिखा है तथा सत्पुरुष जिसका आचरण करते हैं और अपनी आत्मा का सन्तोष-कारक हो वह धर्म है। **'रामोविग्रहवान्धर्मः'** यानी रामजी धर्म के स्वरूप विग्रह हैं। **'कृष्णं धर्मः सनातनम्'** शास्त्र में भगवदुपासना को ही धर्म कहा है। **'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति'** (गीता ९.२६) के अनुसार उपासना अर्चा मूर्त्ति की ही सुगम है। श्रीरङ्ग, वेङ्कटेश, वदरीनारायण, जगन्नाथ आदि स्वयंव्यक्त अर्चा विग्रह हैं। मन्त्र से स्थापित अर्चा विग्रह अन्य मन्दिरों में हैं।

'तत्त्व विभाग' में रामजी ईश्वर तत्त्व हैं तथा जानकी जी माया तत्त्व हैं एवं लक्ष्मण जी जीव तत्त्व हैं। ईश्वर तत्त्व के पाँच भेद हैं—पर, व्यूह, वैभव, अर्चा एवं अन्तर्यामी। माया के दो भेद हैं–जड़ एवं अजड़ यानी चैतन्य। जीव के पाँच भेद हैं–नित्य, मुक्त, बद्ध, कैवल्य और मुमुक्षु।

'भक्तिभगवन्त की' यानी परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिये अन्य देवों की नहीं **'अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो हरि धाम'** (अरण्य ३२)। कई प्रकार की भक्ति कही गयी है उसमें प्रह्लाद जी द्वारा बतायी गयी नवधा भक्ति है—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ।।

(भागवत ७.५.२३)

कथा सुनना श्रवण भक्ति है। भगवान् का भजन करना कीर्त्तन है। भगवान्, भागवत, गुरु एवं मुनियों के वचन को याद रखते हुए लाचार एवं दुःखी को सहायता पहुँचाना ही स्मरण भक्ति है। पादसेवन भक्ति में भगवान् के चरण एवं गुरुजनों की सेवा है। अर्चना भक्ति में सोलह उपचार से पूजा करना तथा शरणार्थी एवं भूखे प्यासे रोगियों को

सहायता और निर्बोध को बोध देना आदि है। वन्दन भक्ति से भगवान् के चरणों को बार-बार नमन करना है। दास्य भक्ति से अपने को परमात्मा का सेवक समझते हुए जनकल्याण में अपने को तथा धन को लगा देना है। सख्यभक्ति में परमात्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध बना लेना है। सांसारिक लोग जीवन में एक सम्बन्ध बन जाने पर जीवन भर निभाते हैं तब भगवान् के साथ बने सम्बन्ध को भगवान् भी कभी नहीं छोड़ेंगे। आत्मनिवेदन भक्ति शरणागति है। पाञ्चरात्र में शरणागति के छः रास्ते बताये गये हैं—

अनुकूलस्य सङ्कल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षतीति विश्वासः गोप्तृत्वं वरणं यथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागति।

(लक्ष्मीतन्त्र १७.५९-६१)

अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये १. अनुकूल का सङ्कल्प, २. प्रतिकूल का त्याग, ३. रक्षक भगवान् में पूर्ण विश्वास, ४. गोप्तृत्व वरणम् यानी रक्षा का काम भगवान् को सौंप देना, ५. आत्मनिक्षेप अर्थात् आत्मसमर्पण, ६. कार्पण्यम् यानी कातरता विनम्रता एवं पारतन्त्रता भाव से उद्भूत रहना।

ज्ञानविभाग से ऐसे ज्ञान को प्राप्त करना है जिससे यह समझ में आ जाये कि भगवान् पूर्ण प्रकाश हैं हम उनके अंश हैं। जिससे परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो वही ज्ञान है बाकी सब अज्ञान है। भगवत्प्राप्ति के लिये संसार से विराग होना आवश्यक है जैसे राजा भरत को हुआ। तुलसीदास जी ने कहा है—

जहॉ काम तहॅ राम नहीं जहॉ राम नहीं काम।
तुलसी दोउ न होत है रवि रजनी इक ठाम।।

(तुलसी सतसई १.४४)

यह जग से छत्तीस '३६'हो रामचरण छवतीन'६३'।
तुलसी सोई चतुरता सोई परम प्रबीन।।

(तुलसी सतसई ३.७)

संख्या ३६ का ३ एवं ६ की तरह अलग थलग रहे यानी संसार से ३६ का नाता रखे। भगवान् के चरण के साथ ६३ की तरह रहे अर्थात् आपने-सामने लिपट कर रहे।

●

(3)

पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग विहारू।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारू।। (बा 37)

भगवान् की कथा सुनने तथा स्मरण करने से रोमाञ्चित हो जाना एवं आनन्दातिरेक से आँखों से जल बहना परम भक्ति के लक्षण हैं। भगवान् की कथा से उत्पन्न रोमाञ्चादि अवस्था को वाटिका, बाग तथा वन की श्रेणी में रखा गया है। इससे उत्पन्न सुख की अनुभूति ही वाटिका, बाग तथा वन में बसने वाले पक्षीगण संत मुनि आदि होते हैं। भक्त ही माली है जो अपने प्रेम रूपी अश्रु जल से सींचकर वाटिका, बाग तथा वन को हरा भरा बनाये रखता है। कथाश्रवण या मनन से उत्पन्न रोमाञ्चादि की दृश्यावली में चारो तरफ से वन, बाग को घेरे हुए है तथा बाग के केन्द्र में अत्यन्त हरा भरा वाटिका स्थित है। वन के पक्षी ब्रह्मा, रुद्रादि हैं। बाग के पक्षी वाल्मीकि, व्यास आदि हैं तथा वाटिका के पक्षी सुतीक्ष्ण आदि हैं—'**... पुलक शरीर पनस फल जैसा**' (अरण्य ९.८)।

वाटिका के वृक्ष लतादिक सुकोमल हैं जिन्हें नियमित रूप से सींचने की आवश्यकता है। जबकि बाग में दृढ़तर वृक्षादि रहते हैं और वन में दृढ़तर वृक्षादि हैं जो प्रकृति प्रदत्त जल से ही हरे भरे

रहते हैं। कथा से आनन्दित होकर रोमाञ्च का होना तथा अश्रु का बहना वाटिका का बोधक है जिसमें भगवत् माधुर्य भाव प्रधान है। केवल रोमाञ्चित होना वन का प्रतीक है जिसमें भगवत् ऐश्वर्य की प्रधानता है। बाग माधुर्य तथा ऐश्वर्य के बीच के भाव का द्योतक है। मानस से कुछेक उदाहरण—

सजल रोमावली वाले वाटिका स्थानिक भक्त भरत जी **'सुनि तन पुलक नयन भरि बारि। बोले भरत धीर धरि भारी'** (अयोध्या २९२.१)। अहल्या **'अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा युगल नयन जल धार बही'** (बा० २१०.छं० १)। जनकपुर में सीता जी को सखियों द्वारा देखना **'तासु दशा देखि सखिन पुलकगात जल नैन'** (बा० २२८)। राजा दशरथ **'वारि विलोचन वॉचत पाती। पुलकगात आई भरी छाती'** (बा० २८९.२)। जनकपुर में महादेव जी **'पुलकगात लोचन सजल उमा सहित त्रिपुरारि'** (बा० ३१५)। अयोध्यावासियों का जनकपुर बारात प्रस्थान के समय राम लखन के दर्शन की लालसा **'सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर'** (बा० ३००)। कौसल्या जी वनगमन काल में **'बार बार मुख चूमति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता'** (अयोध्या ५१.२)। लखन लालजी वन जाने के लिये **'कम्प पुलकतनु नयन सनीरा। गहे चरण अति प्रेम अधीरा'** (अयोध्या ६९.१)। वनगमन के रास्ते एक तपस्वी रामजी से मिलते हैं—**'सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानी'** (अयोध्या ११०)। भरतजी का वनगमन काल में **'तन पुलके अति हर्ष हिये वेनि वचन अनुकूल'** (अयोध्या २०५)। **'पुलक शरीर सभी भय ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े'** (अयोध्या २५९.२)। **'अस कहि प्रेमविवस भये भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी'** (अयोध्या ३००.३)। जङ्गलवासियों से भरत जी के आगमन की पूर्व सूचना पर भगवान् राम **'सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर। सरद सरोरूह नयन तुलसी भरे सनेह जल'** (अयोध्या २२६)। चित्रकूट के मार्ग में ग्रामवासी **'एहि विधि पूछहि प्रेमवश पुलकगात जलनैन'** (अयोध्या ११२)। पादुका की आज्ञा से राज काज भरत जी चला रहे हैं—**'पुलक गात हिय सिय रघुवीरा। जीह नाम जप लोचन नीरा'** (अयोध्या ३२५.१)। रामजी के अयोध्या वापसी की भरत जी को सूचना देने हनुमान जी अयोध्या पहुँचते हैं और भरत जी को देखकर **'देखत हनुमान अति हरषे। पुलकगात लोचन जल बरषे।।** दोनों के मिलन में **....मिलत प्रेम नहीं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता'** (उ० १.१, ५)। भरत जी एवं रामजी का मिलन **'श्यामलगात रोम भये ठाढ़े। नवराजीव नयन जल बाढ़े'** (उ० ४.४)। विभीषण जी शरणागति के पूर्व सागर किनारे **'नयननीर पुलकित अतिगाता। मन धरि धीर कहि मृदु बाता'** (सु० ४४.३)। गरुड़ जी को कथा सुनाते समय कागभुसुंडी **'पुलकगात लोचन सजल मन हरषे अति काग'** (उ० ६९)। रामजी से सनकादिकों का मिलन **'तिनकर दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा'** (उ० ३२.३)।

वन सदृश उदाहरण—शिवजी के उहारण से वन के सदृश दृढ़ता दिखती है—**'चले जात शिव सती समेता। पुनिपुनि पुलकत कृपानिकेता'** (बा० ४९.२)। जहाँ अश्रुसिञ्चन का अभाव है। मैत्रेय मुनि की स्थिति शुकदेव जी कहते हैं—**'प्रहृष्ट रोम भगवत् कथायाम्'** (भा० ३.१३.५)।

कंस वध के पहले पहलवानों से मल्लयुद्ध करते असमान प्रतियोगी के स्थिति में कृष्ण बलराम की कोमलता एवं आकर्षक स्वरूप देख मथुरा के लोग गोपीजनों के भाग्य की प्रशंसा करते हैं। यह गोपीजनों की 'वाटिका जैसी' स्थिति का चित्रण करता है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्ख

इङ्खना अर्भरुदिता उक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठया
धन्याव्रजस्त्रिय उरूकमचिन्तयाना ।।

(भा० १०.४४.१५)

गाय दूहते, दही मथते, घर साफ करते, गोशाला में तथा अन्य कहीं भी अश्रुपूरित आँखों से भगवान् श्रीकृष्ण के अनुराग में मग्न स्थिति का स्मरण कराते हैं।

भगवद् अनुसंधान में स्वत: उत्पन्न हर्षातिरेक की स्थिति में रोमाञ्चित होना वन की स्थिति है। किसी भागवत के उपदेश के पश्चात् आनन्द की स्थिति को प्राप्त होना वाटिका एवं बाग की स्थिति है; क्योंकि वन स्वत: लगते हैं जबकि वाटिका एवं बाग किसी के लगाने पर लगते हैं।

'सुविहंग' शब्द सुखरूपी भिन्न-भिन्न पक्षियों के प्रतीक हैं। वाटिका में रायमुनि, पक्षी वगैरह तथा बाग में कोयल आदि एवं वन में मोर, हंस आदि के उदाहरण हैं। मानस के इस दोहे में भगवद् अनुसंधान के सुख एवं सुख के स्थान वाटिका, बाग एवं वन को 'सुविहंग' से ही दर्शाया गया है।

●

(4)

जेहि अग बधेउ व्याध जिमि बाली । सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली ।।
सोई करतूति विभीषण केरी । सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी ।।

(बा॰ 28.3-4)

कौन-सा अपराध वालि का था जिसके कारण उसका वध हुआ; परन्तु उसी की पुनरावृत्ति सुकंठ यानी सुग्रीव तथा विभीषण ने की; परन्तु रामजी ने उसकी उपेक्षा कर दी और ये दोनों भगवान् के प्रिय बने रहे। इसकी विवेचना में विभिन्न रामायणियों के विभिन्न दृष्टिकोण रहे हैं। जब वालि दुन्दुभि राक्षस से लड़ने गुफा में गया था तब सुग्रीव को गुफा द्वार पर ही रोककर उसने कहा था—**'परखेहू मोहि एक पखवारा'** (कि० ५.३)। परन्तु सुग्रीव वहाँ **'मास दिवस तहँ रहेउ खरारी । निसरा रूधिर धार तहँ भारी'** (कि० ५.४)। कुछ लोग मास दिवस का अर्थ तीस दिन करते हैं; परन्तु मास तो बारह हैं अत: सुग्रीव बारह दिन ही गुफाद्वार पर रूके। अत: वे वचनभंग के दोषी हुए। वालि ने इसीलिये अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी रूमा को बलात् अपने पास रख लिया तथा भाई को देश निकाला कर दिया। जब रामजी से सुग्रीव की मैत्री हुई तो उन्होंने रूमा के साथ दुर्व्यवहर के कारण ही वालि को दोषी पाया था और वालि के वध के बाद रामजी ने उसे बताया कि क्यों तुम्हारा हमने वध किया—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी ।
सुनु सठ ये कन्या सम चारी ।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई ।
ताहि बधे कछु पाप न होइ ।।

(किष्किन्धा ८.४)

कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि सुग्रीव ने भी तो वालि की पत्नी तारा को अपने पास रख लिया था तब वह पापी हुआ; परन्तु तारा सती नारी थी और भगवान् को प्रिय थी। वालि वध के उपरान्त उसे रामजी ने ज्ञान देकर भक्ति का वर दिया था—

तारा विकल देखि रघुराया ।
दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हि माया ।।
उपजाज्ञान चरण तब लागी ।
लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी ।।

(किष्किन्धा १०.२-३)

अत: तारा कभी कुलटा बन ही नहीं सकती थी। इसलिये सुग्रीव को दोषी बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। एक दोष ऐसा है जो वालि एवं सुग्रीव दोनों को साथ लगता है वह है मद एवं अभिमान का। वालि को अपनी शक्ति का मद था; क्योंकि तारा के मना करने पर भी वालि सुग्रीव के ललकारने पर उसे मारने के लिये दौड़ पड़ा था—

अस कहि चला महा अभिमानी।
तृण समान सुग्रीवहि जानी।।

(किष्किन्धा ७.१)

रामजी ने जब सुग्रीव को राजा बना दिया तब वह भी राजमद में आकर रामजी के काम को भूल गया था जिसे ठीक करने के लिये रामजी ने लक्ष्मण जी को किष्किन्धा भेजा था—

सुग्रीवहिं सुधि बिसारी। पावा राजकोष पुरनारी।।

(किष्किन्धा १७.२)

परन्तु रामजी ने सुग्रीव को भय दिखवाकर रास्ते पर लाया था जो वालि नहीं कर सका था। अभिमान एवं मद के दोषी विभीषण भी हुए थे। इस तरह की कथा पद्मपुराण में है। एक बार एक साधु को अपने पैर से कुचल कर उन्होंने मार दिया था। अन्य साधु लोग विभीषण का भी वध करना चाहते थे और उसे बन्दी बना लिया था। रामजी के हस्तक्षेप से विभीषण छूट सके थे; परन्तु उनके बदले साधु के ब्रह्म हत्या दोष से निवारणार्थ रामजी ने तपस्या की थी। अत: अभिमान के दोष से सुग्रीव एवं विभीषण दोनों को रामजी ने बचा लिया था; क्योंकि वे उनकी बात मानने वाले भक्त थे; परन्तु वालि ऐसा नहीं था तारा ने कहा था—

सुनु पति जाही मिला सुग्रीवाँ।
ते दोउ बन्धु तेज बल सीवाँ।।

(किष्किन्धा ६.१४)

तारा तेजबल से नारायण का सङ्केत कर रही थी; परन्तु वालि नहीं माना।

●

(5)

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।।
माँगहु वर बहुभाँति लोभाये। परमधीर नहीं चलहिं चलाये।।

(बा॰ 144.1)

मनु शतरूपा पुत्र के लिये तपस्या रत थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अनेकों बार आने पर भी वे उनसे वर नहीं माँगे। उन्हें परमधीर की उपाधि से क्यों विभूषित किया गया यही इस प्रसङ्ग में विवेचित है। नियम है कि भगवान् अगर अन्य देवों के साथ देवालय में रहें तब भी उनका तीर्थ प्रसाद नहीं करना चाहिये। अनन्य भक्ति में भगवान् को छोड़कर किसी अन्य के प्रति लगाव नहीं रहता। मनु **'ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय'** द्वादशाक्षर मन्त्र का जप कर रहे थे— **'द्वादशाक्षर मन्त्रवर जपहि सहित अनुराग'** (बा० १४३)। अत: सबके साथ विष्णु भगवान् का आना उनकी अनन्यता की परीक्षा थी। सतयुग का समय था। त्रेता में भगवान् को रामजी बनकर आना था। अत: राम रूप में दर्शन देकर मनु को कृतार्थ किये हैं। कुछ लोग षड़ाक्षर मन्त्र **'ॐ रामाय नमः'** दोनों दम्पति द्वारा जपे जाने के कारण दोनों को मिलाकर द्वादशाक्षर हुआ ऐसा अर्थ भी लगाते हैं।

पुर वैकुण्ठ जान सब कोई।
कोई पयोनिधि बस प्रभु सोई।।
हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम से प्रकट होहीं मैं जाना।।

(बा० १८४-१, ३)

भगवान् के अनेकों नाम में एकत्व का ही बोध होता है। भगवान् ने तो स्वयं कहा है कि कश्यप अदिति के तपस्या के वर के कारण तथा अब मनु शतरूपा को वर देकर जो दशरथ कौशल्या बनकर आयेंगे उनके पुत्र बनकर आऊँगा। नारद जी के शाप को भी पूरा करूँगा। इससे भगवान् विष्णु एवं रामजी में एकत्व सिद्ध होता है। अतः द्वादशाक्षर एवं षड़ाक्षर में कोई भेद नहीं है।

●

(6)

जाके सुमिरन ते रिपुनाशा । नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ।। (बा॰ 196.4)

बालकाण्ड में चारो भाई के नामकरण के प्रसङ्ग में वसिष्ठ जी ने यह नाम दिया है। शत्रु तो मात्र जीवन भर ही रहते हैं। मृत्यु के उपरान्त शत्रुता का नाश हो जाता है जैसे विभीषण का रावण के मरने पर हुआ था। प्रश्न है कि ऐसी कौन शत्रुता का नाश शत्रुघ्न जी करेंगे। मथुरा में लवणासुर को अपना परिचय देते हुए शत्रुघ्न जी ने कहा शत्रुओं को मारने वाला शत्रुघ्न मेरा नाम है—**'शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नः'** (वा०रा०, उ० ६८.११) अर्थात् जन्म, मरण तथा संसार रूपी सतत शत्रु का नाश ही इनके नाम जपने से होगा। काम तथा कोप भी नित्य शत्रु हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

(गीता ३.३७)

सुदर्शन चक्र के अवतार के कारण ऐसा होना स्वाभाविक है। सुदर्शन तो भगवान् की प्रेरणा से ही चलता है। उदाहरण में गजग्राह एवं शिशुपाल आदि हैं।

●

(7)

लक्षणधाम रामप्रिय सकल जगत आधार ।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखेउ लक्ष्मण नाम उदार ।। (बा॰ 197)

यहाँ तीन बातों पर बल दिया गया है–'लक्षण-धाम' यानी चेतनों के लक्षण के खजाना तथा सबका 'आधार' एवं 'उदार'। लक्ष्मण जी के चरित से उनको लक्षणों का खजाना होना सिद्ध होता है। उदाहरण के लिये **'अनन्यशेषत्व' 'अनन्यभोग्यत्व'** तथा **'अनन्यपारतन्त्र्य'** चेतन के लक्षणों में सर्वोपरि हैं। ये सभी लक्ष्मण जी के साथ मिलते हैं। चेतन प्राणी भगवान् का शेष यानी अंश है तथा उन्हीं के भोग यानी सेवा के लिये है तथा भगवान् के अधीन है यानी परतन्त्र है। शेषत्व गुण को श्री यामुनाचार्य स्वामी ने कहा है—**'निवासशय्यासनपादुकांशु-कोपधानवर्षातप...'** (स्तोत्ररत्न ४०)। शेषत्व धर्म से राम प्रिय होता है। अयोध्या से वन तक सतत भगवान् की सेवा में तत्पर रहे। पर, व्यूह, वैभव एवं अर्चारूप में भी लक्ष्मण जी सदा भगवान् के साथ रहते हैं।

'आधार' का अर्थ है नीचे रहकर अवलम्ब प्रदान करना जो शेष बनकर लक्ष्मण जी सतत करते रहते हैं। समस्त संसार के आधार शेष जी ही हैं। प्रलयकाल में भी शेषजी भगवान् के शय्या बनकर अपने पेट से शीतल वायु का उन्हें सेवन कराते रहते हैं। राम मन्त्र के साथ लक्ष्मण मन्त्र से भी भक्तों का कल्याण होता है—**'लक्ष्मणो लक्ष्मि-वर्धनः ....'** (वा०रा०, बा० १८.२७)।

बन्दौ लक्ष्मण पद जलजाता ।
शीतल सुभग भक्त सुखदाता ।।

(बा० १६.३)

'उदारता' का अर्थ है कि जो बिना माँगे या कहे ही सहायता के लिये तत्पर रहता है—

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा ।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजौ मुनि ।।

सतयुग में अनन्त शेष रूप में तथा त्रेता में लक्ष्मण बनकर एवं द्वापर में बलराम के रूप में और कलियुग में लक्ष्मण जी ही निर्हेतुकी कृपा से रामानुज स्वामी बनकर मानवसमूह का कल्याण किये हैं। 'रामानुज' कहने से भगवान्, भागवत तथा आचार्य सब का एक साथ ही बोध होता है जो उदारता गुण के ही कारण है।

●

(8)

विनयप्रेम वश भई भवानी । खसी माल मूरति मुसकानी ।। (बा॰ 235.3)

जनकपुर में विवाह के पहले सीताजी द्वारा यह गौरी पूजन के प्रसङ्ग में है। इसके अर्थ में रामायणियों के भिन्न-भिन्न भाव हैं। चर्चा होती है कि माला कैसे एवं क्यों गिरी तथा कौन-सी मूर्ति मुसकाई? कुछ कहते हैं कि गौरी के साथ शङ्कर जी की भी मूर्ति थी। माला गिरने पर शङ्कर जी की मूर्ति मुसकरायी है। इस प्रसङ्ग में अन्य चौपाईयों से स्पष्ट होता है कि यह केवल भवानी यानी गौरी जी का ही मन्दिर था शङ्कर जी वहाँ नहीं थे—

'गिरिजापूजन जननी पठाई...', 'सरसमीप गिरिजा गृह सोहा...', 'गई मुदित मन गौरी निकेता...', 'गई भवानी भवन बहोरी' (२२७-१-३; २३४.२)। कुछ के मत हैं कि भवानी की मूर्ति बोलने वाली थी—

सुनि सिय सत्य असीस हमारी ।
पूजहिं मनकामना तुम्हारी ।।
नारद वचन सदा शुचि साँचा ।
सो वर मिलहि जाही मन राँचा ।।

(बा० २३५.४)

अत: भवानी प्रसन्न होकर स्वयं सीताजी को माला पहनाने लगीं और प्रेमविभोर होने के कारण माला उनके हाथ से गिर गयी। एक और भाव है कि सीताजी के हृदय में भगवान् राम की मूर्ति विराज रही थी। **'....चली राखि उर श्यामल मूरति'** (बा० २३४.१)। अत: भवानी को स्मरण हो आया कि माला रामजी के लिये हो जायेगी जो सतीधर्म के विरोध में होगा। अत: माला हाथ से छूटकर नीचे गिर गयी। इतना तो स्पष्ट है कि माला किसी ने गिरायी नहीं है यह स्वयं गिरी है। अत: युक्तिसङ्गत भाव यह प्रतीत होता है सीताजी की पूजा के भाव से प्रसन्न होकर प्रसाद के रूप में भवानी स्वयं माला सीताजी को पहनाने लगी हैं; परन्तु प्रेम विभोर होने के कारण सुध बुध खो बैठीं एवं माला हाथ से छूट गयी। सुध बुध आने पर भवानी मुसकायीं। सीताजी ने प्रसाद समझ कर माला को उठाकर पहन लिया—

सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ ।
बोली गौरी हर्ष हियँ भरेऊ ।।

●

(9)

अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हर्षहिं ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहिं ।।

सुन्दरी सुन्दर वरन वर सह एक मण्डप राजहिं।
जनु जीव अरू चारिउ अवस्था विभुवन सहित विराजहिं।।

(बा॰ 324.छंद 4)

जनकपुर में विवाह मण्डप का प्रसङ्ग है। चारो दुलहिन एवं चारो दुलहा विराजमान हैं। दर्शक दीर्घा में ऋषि, मुनि, देवगण आदि भी उपस्थित हैं। वर के अनुरूप यानी समान दुलहिन हैं। सङ्कोच भी है एवं आनन्द भी है। माधुर्य एवं ऐश्वर्य रस समान रूप से आनन्द दे रहे हैं। माधुर्य रस के आनन्द के लिये दिव्य चक्षु चाहिए और ऐश्वर्य तो चर्म चक्षु से ही आनन्द दे रहा है—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखहिं तिन तैसी।।

(बा० २४०.२)

रामजी श्यामल मूर्ति हैं—

नीलसरोरूह नील मणि नील नीरधर श्याम।
अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शतकाम।।

(बा० १४६)

...इनसे लहि द्युति मरकत सोने।

(अयोध्या ११५.४)

भगवान् की श्यामता से ही नीलमणि नीलामेघ नीलकमल को रंग मिला है। रामजी की सुन्दरता के सामने करोड़ों कामदेव की सुन्दरता फीकी है। रामजी स्वयं अप्राकृत हैं—

यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

(तैत्तिरीयसंहिता ब्रह्माण्डबल्ली २.४)

इसी प्रकार सीताजी–**हिरण्यवर्णा...। चन्द्रां प्रभासां ज्वलन्तीं...। आदित्यवर्णे...** (श्रीसूक्त)। स्वर्ण को रंग एवं लावण्य सीताजी से ही मिला है। रामजी एवं सीताजी सर्वथा एक-दूसरे के अनुरूप हैं। एक से मणि को सुन्दरता मिली तो दूसरे से स्वर्ण कान्तिमान हुआ। युगल सरकार सबों को आकर्षित कर आनन्दित कर रहे हैं। लक्ष्मी भगवान् के वक्षस्थल पर रेखा स्वरूप में सदा विराजती हैं। भगवान् ने लक्ष्मी को समुद्रमन्थन से प्राप्त किया था। जनकपुर में विवाह के पूर्व छः वर्ष की अवधि के लिये सीताजी भगवान् से दूर रहीं अन्यथा सर्वदा वैकुण्ठ में साथ रहती हैं। इसी को स्मरण कर सकुचा रहीं हैं; परन्तु मण्डप में साथ विराजने से हर्षित भी हैं। इसी तरह से देवतागण भी सकुचा रहे हैं। इसके पूर्व भगवान् के अवतार तो कई हैं जैसे मछली, कछुआ, सूकर, नरसिंह, वामन आदि; परन्तु विवाह तो रामावतार में ही हो रहा है और इसका आनन्द सबों को मिल रहा है। भगवान् सभी देवगणों के पिता हैं इसलिये पिता के विवाह में हर्ष तो है; परन्तु सङ्कोच भी हो रहा है कि कहीं संतान अपने पिता के विवाह में कैसे सम्मिलित होगा।

जीव की चार अवस्थायें हैं–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय। मण्डप की चारों दुलहिन मानो जीव की चारों अवस्थाओं को एक ही साथ दर्शा रहीं हैं और साथ में चारों भैया सभी अवस्थाओं के स्वामी के प्रतीक हैं। माण्डवी एवं भरत जी जाग्रत अवस्था को तथा उर्मिला एवं लक्ष्मण जी स्वप्नावस्था को और श्रुतिकीर्ति एवं शत्रुघ्न जी सुषुप्ति को प्रकाशित कर रहे हैं। तुरीयावस्था में संसार की सभी वस्तुओं की कामना से छुटकारा मिल जाता है। यह जीवन्मुक्त की स्थिति है। इसे पञ्चम पुरुषार्थ भी कहते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से ऊपर उठकर जीव तुरीयावस्था में भगवान् का विलक्षण अनुभव प्राप्त करता है। जैसे महाराज ध्रुव को हुआ था—**'...तस्थौ स्थाणुः इव अचलः'** (भा० ४.८.७६) अर्थात् भगवान् की अलौकिक अनुभूति में पूर्णतया जड़वत् अचल हो गये थे। **'...को हम कहाँ विसरी तनु गये'** (उ० १६.१)

अयोध्या से विदाई के समय सुग्रीवादि की स्थिति। **'देखि भानुकुल भूषणहिं विसरा सखिन अपान'** (वा० २३३) जनकपुर पुष्पवाटिका में सीताजी की सखियों की स्थिति। **'...को मैं चलेऊ कहा नहीं बूझा। गबहुँक फिरि पाछे मुनि जाई...। मुनि मग माँझ अचल होई वैसा। ...मुनिहिं राम बहुभाँति जगावा'** (अर० ९.६) दण्डकवन में रामजी के आगमन के समय सुतीक्ष्ण मुनि की स्थिति। ये सभी तुरीयावस्था के लक्षण हैं। विवाह मण्डप रूपी शरीर में दशरथ जी जीव के प्रतीक हैं तथा चारो दुलहिन रूपी अवस्थाओं के स्वामी चारो दुलहा हैं। शरीर को इन चार अवस्थाओं का एक ही बार अनुभव नहीं होता; परन्तु यहाँ दशरथ जी को सौभाग्य से चारो का अनुभव उन सबों के स्वामी के साथ एक साथ ही मिल रहा है।

●

(10)

मुदित अवधपति सकल सुत वधुन समेत निहारी।
जनु पायेऊ महिपाल मणि क्रियन सहित फलचारी।। (बा॰ 325)

राजा दशरथ चारो पुत्र की दुलहिनों को देखकर ऐसे प्रसन्न हैं कि मानो चारो पुरुषार्थ का फल एक ही बार मिल गया है। राजा दशरथ तपस्या से रामजी को पुत्र के रूप में प्राप्त किये थे। भगवान् उन्हें भक्ति से नहीं मिले थे, इसलिये उन्हें मोक्ष नहीं मिला था। इस दोहा का 'जनु' शब्द इसी का सङ्केतक है। भक्ति की साधना से ही जब सब कुछ प्राप्त हो जाता है तब प्रश्न उठता है कि चारो पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है। भक्ति के सदा साथ रहने वाली दया, श्रद्धा एवं क्षमा भी भक्ति के साथ ही जीव को अपने आप प्राप्त हो जाती है। भगवान् राम चारो भैया के भिन्न देह में रहने पर भी एक ही हैं—

अंशन सहित मनुज अवतारा।
लेहहों दिनकर वंश उदारा।।

(बाल० १८६.१)

वैसे ही भक्ति रूपी जानकी जी के साथ माण्डवी दया एवं उर्मिला श्रद्धा तथा श्रुतिकीर्ति क्षमा सर्वदा विराजमान रहती हैं। जैसे मुक्ति के साथ धर्म, अर्थ, काम अनायास मिल जाते हैं, उसी तरह भक्ति के साथ दया श्रद्धा एवं क्षमा मिल जाती हैं—**'भक्ति स्वतन्त्र सकल गुणखानी'** (उ० ४४.३)। मुक्ति अवस्था के स्वामी रामजी हैं तथा धर्म के स्वामी भरत जी हैं—

जो न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को।।

(अयो० २३२.१)

काम के स्वामी लक्ष्मण जी हैं—

रामस्य दक्षिणं बाहुः। (अयो०)
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते।

(वा०रा०, अयो० ३१.२७)

अर्थ के स्वामी शत्रुघ्न जी हैं। जैसे अर्थ किसी को नहीं खोजता फिरता। उसके आने से संतोष हो जाता है वैसे ही शत्रुघ्न जी सर्वदा शांत एवं मौन रहे हैं।

●

(11)

मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा खोज खोज कवि लाजे।।
लही न कतहु हारि हिय मानी। इन सम यह उपमा उर आनी।।

समधि देखि देव अनुरागे । सुमन वरषि यश गावन लागे ।।
जग विरञ्चि उपजावा जबते । देखे सुने व्याह बहु तबते ।।
सकल भाँति सब साज समाजू । सम समधी देखा हम आजू ।।

(बा॰ 319.1-2)

रामजी के विवाह काल का प्रसङ्ग है। वर एवं वधू के पिता को समधी कहते हैं। देवगण दोनों समधी राजा दशरथ एवं जनक जी को 'सम समधी' यानी समान कह रहे हैं। समता के अतिरिक्त दोनों राजा में विषमता भी है। (१) दशरथ जी चक्रवर्ती हैं तो जनक जी मण्डलवर्ती। दशरथ जी के लिये कहा है—

सुरपति वसहिं बाहुवल जाके ।
नरपति रहिहिं सकल रूख ताके ।।

(अयो॰ २४.१)

(२) दोनों के मान प्रतिष्ठा में भी अन्तर है। दशरथ जी को—

सुरपति जेहि आगे करि लेहीं ।
अर्घ सिंहासन आसन देहीं ।।

(अयो॰ ९७.२)

(३) दशरथ जी का इक्षवाकु कुल भागवत धर्मावलम्बी है, रङ्गनाथ भगवान् कुलदेवता हैं। जनक जी शैव कुल के हैं इनके पूर्वज देवरात को शिव जी ने अपना धनुष दिया था।

(४) दशरथ जी की मृत्यु के उपरान्त भरत जी को वसिष्ठ जी समझाते हैं—

भे कोउ अहहिं न होनेउहारा ।
भूप भरत जस पिता तुम्हारा ।।

(अयो॰ १७२.३)

दशरथ जी के तुल्य कोई हो नहीं सकता।

दोनों समधी में समानता है; क्योंकि (१) सीताजी एवं रामजी भिन्न नहीं हैं—**गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । बन्दौ सीताराम पद...।।** (बा॰ १८)। ऐसे समान वस्तु के अधिकारी पिता भी समान हुए।

(२) रामजी नारायण एवं सीताजी लक्ष्मी हैं। ईश्वर एवं ईश्वरी के पिता होने के कारण दोनों समान हैं।

(३) लक्ष्मी और नारायण का पिता कोई नहीं हुआ इसलिये **'उपमा खोज खोज कवि लाज'** परन्तु आज संयोग वश **'इनसम ये उपमा उर आनी'** यानी आकाश की उपमा आकाश एवं सुमेरु की उपमा सुमेरु ही हो सकती है। ऐसी स्थिति में दोनों समधी समान हुए।

(४) जीव परोक्ष रूप से अपने सुकृत या दुष्कृत से सम्पर्क रखता है; परन्तु दशरथ जी एवं जनक जी के सुकृत रामजी एवं सीता जी दोनों को परोक्ष नहीं मूर्तिमान होकर साक्षात् दर्शन दे रहे हैं—

दशरथ सुकृत राम धरि देही ।
जनक सुकृति मूरति वैदेही ।।

(बा॰ ३०९.१)

इसलिए भी दोनों में समानता है।

(५) रामजी एवं सीताजी अयोनिज हैं रामजी खीर से आये—**'निज इच्छा निर्मित तनु'** (बा॰ १९२)। सीताजी धरती से आयीं। अत: अयोनिज के पिता होने से दोनों समान हुए।

(६) विवाह के आनन्द से दोनों गद्गद् हैं अत: समान हुए।

(७) रामजी एवं सीताजी के परत्व के कारण दोनों समधी में समानता है। सीताजी रामजी के हृदयस्थ हैं तथा रामजी सीताजी के हृदयस्थ हैं। दशरथ जी रामजी एवं जानकी जी को समान भाव से देखते हैं तथा जनक जी भी दोनों को समान भाव से देखते हैं। इन्हीं कारणों से विषमता के

बावजूद भी दोनों में समानता है।

रामजी की बाराती में शिवजी की बाराती की तरह डरावने लोग बारात में नहीं थे। अत: देवगण प्रसन्नचित्त से समान बुद्धि यानी 'सम' 'धी' से बारात का दर्शन किए। इसलिये भी समधी शब्द का प्रयोग हुआ है।

'देखा हम आजु' का भाव है कि पहले इस तरह की बारात देखा नहीं था। शिवजी की बारात में ब्रह्मा एवं हिमाचल समधी थे और दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। इसी तरह से अन्य देवों की बारात में भी समानता का अभाव रहा है।

●

(12)

सूयोदन सुरभी सरपी सुन्दर स्वादु पुनीत।
छनमहँ सबके परसि गे चतुर सुआर विनीत।। (बा॰ 328)
भाँति अनेक परे पकवाना...व्यञ्जन विविध भाँति को जाना।। (बा॰ 325.2)

परसने वाले सब चतुर थे यानी पत्तल में कहाँ क्या रखना है जानते थे। 'पुनीत' भोजन यानी भगवान् को भोग लगा हुआ प्रसाद के रूप में भात, दाल एवं गाय का घी अनेक पकवान आदि परोसे गये।

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।
(गी॰ ९.२७)

भगवान् ने कहा है मेरे निमित्त सब काम करो। मुझे अर्पण कर ही भोजन करो। **'यज्ञशिष्टाशिन: सन्तोमुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै:'** (गी॰ ३.१३)। भगवान् के अर्पित अन्न खाने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है।

अयोध्यावासी **'पञ्च कवल करि जेवन लागे'** (बा॰ ३२८.१)। आपोसन यानी पञ्चकवर करके ही भोजन करना चाहिये—

पात्रमध्ये यथा पात्रं हस्तमध्ये यथा घृतम्।
आपोषणं बिनाभुङ्क्ते त्रयो गोमांस भक्षणम्।।

अर्थात् वर्तन के बीच वर्तन रखकर खाना, हाथ में लेकर घी खाना, बिना पञ्चकवर का भोजन करना गोमांस खाने के समान पापकारी है।

भोजन के पूर्व चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश से युक्त भगवान् विष्णु का हृदयकमल में ध्यान कर तुलसीमिश्रित जल से **'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'** से आचमन कर जल पी लेवे। **'ॐ प्राणाय स्वाहा'** मन्त्र कहते हुए अङ्गूठा तर्जनी एवं मध्यमा अङ्गुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये; परन्तु दाँतों से न चबाये। **'ॐ अपानाय स्वाहा'** कहते हुए अङ्गूठा मध्यमा एवं अनामिका अङ्गुली से थाली मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। **'ॐ व्यानाय स्वाहा'** कहते हुए अङ्गूठा अनामिका एवं कनिष्ठा अङ्गुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। **'ॐ उदानाय स्वाहा'** कहते हुए अङ्गूठा तर्जनी एवं कनिष्ठा अङ्गुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। **'ॐ समानाय स्वाहा'** कहते हुए पाँचों अङ्गुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। पुन: तुलसीमिश्रित जल से **'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'** से आचमन कर जल पी लेवे। यह पञ्चकवर की विधि है। भोजन का प्रारम्भ मधुर पदार्थ से करते हुए खट्टा नमकीन तथा कडुआ एवं तीता ग्रहण करे और अन्त में मधुर रसयुक्त पदार्थ तथा पीने वाली वस्तु को खाये पीये।

●

(13)

चरण कमल रजकहँ सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ।।
छुअत शिला भई नारि सुहाई ।.....।।
जो प्रभू अवसि पार गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहु ।।

(अयो॰ 99.1-4)

पद कमल धोई चढ़ाउँ नाव न नाथ उतराई चहौं ।...
तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं ।। (अयो॰ 99 छंद)

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुणा ऐन चितये जानकी लखन तन ।। (अयो॰ 100)

कृपासिन्धु बोले मुसकाई । सोई करहु जेहि नाव न जाई । (अयो॰ 100.1)

रामजी जङ्गल के रास्ते शृङ्गवेरपुर में गङ्गा पार करना चाहते हैं। निषादराज पराभक्ति के प्रतीक हैं। अटपटे यानी संदर्भ से हटकर कुछ का कुछ बोल रहे हैं। पत्थर से काठ की नाव तो नरम ही है, अत: आपके चरण की धूल से यह अहल्या की तरह नारी बन जायेगी। मेरा रोजी रोजगार खतम हो जायेगा। ऐसा नहीं था कि उनके पास एक ही नाव थी। भरत जी को पूरी सेना के साथ **'दंड चारि मह भा सब पारा'** (अयो २०१.४)। यह भी बताते हैं—

यह घाट ते थोरिक दूर अहै कटिलौं जलथाह बताइहौं जू ।
परसें पगधुरि तरै तरनि घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ।
तुलसी अवलंब न और कछु लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
वरू मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।

(कवितावली अयो० ६)

अर्थात् आप घाट से थोड़ी दूर जाकर कमर भर पानी में विना नाव के पार कर सकते हैं। हम चरण धोये विना पार नहीं करेंगे इस बात की दृढ़ता सिद्ध करने के लिये अपने परिवार की शपथ न खाकर दशरथ जी की शपथ खाते हैं–यह अटपटा है। लक्ष्मण जी के स्वभाव से निषादराज परिचित लगते हैं और उनके बाण का डर भी उन्हें लगता है; परन्तु इसको पहले ही दुहरा कर उससे अपने को बचाने का प्रयत्न करते हुए अटपटी बातें करते हैं। रामजी को 'प्रभु' तथा 'कृपालु' कहकर सम्बोधित करते हैं।

रामजी पहले जानकी जी की ओर मुसकुराते हुए देखते हैं और तब लखनलाल को देखते हैं। भाव है कि निषाद राज की शरणागति की आतुरता को वात्सल्य भावयुक्त लक्ष्मी तथा शेषजी से अनुमोदित करा दें। यह भी चाहते हैं कि जानकी जी द्वारा लखन लाल से इसे इसके अटपटे वचन के लिये क्षमा दिलवा दें। भगवान् जानकी जी एवं लखन लाल की ओर हँसते हुए देखते हैं। पुन: मुसकराते हुए निषादराज को सम्बोधित करते हैं। रामजी के हँसने का भाव है कि देखो यह कितना बड़भागी है कि हमारे हँसते मुख के दर्शन तथा चरण पखारने के लिये ब्रह्मादिक लालायित रहते हैं और इसे सब प्राप्त हो रहा है—

नरसहस्र महँ सुनहु पुरारी ।
कोई एक होहिं धरम ब्रतधारी ।।...

(उ० ५३.४)

शेषी भगवान् जीव को अपना शेष अंश मानकर अकारण कृपा करते हैं—

सो कुपालु केवट ही निहोरा ।
जो कीन्हें महि पग ते थोरा ।। (अयो १००.२)

(14)

भरत जी के साथ भगवान् का अटूट प्रेम क्यों?

भरत जी ने अपने को सदा नीच समझा—

यद्यपि मैं अनभल अपराधी ।
भई मोहि कारण सकल उपाधि ।।

भगवान् के महान गुणों का स्मरण करते हैं—

तदपि शरण सन्मुख मोहि देखी ।
क्षमि सब करिहहिं कृपा विशेखी ।।
शील सकुच सुठि सरल सुभाउ ।
कृपासनेह सरल रघुराउ ।।

(अयो० १८२.२-३)

बड़ा होते हुए छोटे से मिलना यह शील गुण है। बहुत कुछ करके भी भगवान् कम करने का सङ्कोच करते हैं जैसे विभीषण जी के साथ—

जो सम्पत्ति शिव रावणहि दीन्ह दिये दस माथ ।
सोई सम्पदा विभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ।।

(सु० ४९)

पवित्र एवं सरल स्वभाव तथा शीघ्र द्रवित हो जाने को सुठि गुण कहते हैं। कृपा गुण से दूसरे के कष्ट को तुरत दूर करने के लिये तैयार रहते हैं—

कबहुँक अनभल कीन्ह न रामा ।
मैं शिशुसेवक यद्यपि बामा ।।
तेउ सुनि शरण सामुहे आये ।
सकृत प्रणाम किये अपनाये ।।

(अयो० १८२.३, २९३.२)

भरत रामजी के परस्पर प्रेम के कारण ही भरत जी रामजी को इतने प्रिय हैं—

राम प्राण के प्राण तुम्हारे ।
तुम रघुपतिहिं प्राण ते प्यारे ।।

(अयो० १६८.१)

कौसल्या जी का वचन है कि रामजी भरत के प्राण हैं तथा भरत राजमी को प्राण से भी अधिक प्यारे हैं—

मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थेर ।
अघ अवगुण तजि आदरहीं समुझि आपनी ओर ।।

(अयो० २३३.१)

भगवान् से मिलने चित्रकूट आश्रम पर पहुँचने ही वाले हैं कि भरत जी मन ही मन सोचते हैं कि मेरी माँ की करतूत याद कर भगवान् हमसे नहीं भी मिल सकते हैं; परन्तु वे जब स्वयं की ओर देखेंगे तो उन्हें अपनी कृपा गुण का स्मरण होगा तथा मुझे अवश्य अपना लेंगे। इसीलिये तो कहा है कि **'भरत महा महिमा जलराशि'** (अयो० २५.१)। **'...राम प्रेममूरति तिन्ह आहीं'** (अयो० १८३.२)। रामजी प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं और भरत जी की महिमा समुद्र के समान है।

भरत हृदय सियराम निवासू ।
तहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू ।।

(अयो० २९४.४)

भरत जी के हृदय में सीताराम रूपी सूर्य का सतत प्रकाश है।

भरत जी को रामजी से इतना प्रेम था कि गुरु वसिष्ठ जी एवं मन्त्री सुमंत की बातों को ठुकराकर वे रामजी को मनाने जङ्गल जाने को तैयार हो गये— **'हमरे शरण राम की पनही'** (अयो० २३८.१)। रामजी चित्रकूट में वसिष्ठ जी से कहते हैं—**'भयउ न भुवन भरत सम भाई'** (अयो० २५८.२)। चित्रकूट जाने के पहले वाल्मीकि जी से रामजी ने भरत जैसे भाई का प्राप्त होना अपना पुण्यमाना है—

तात वचन अरू मातु मत भाई भरत राऊ ।
हम कहँ दरश तुम्हार प्रभु सब निज पुण्य प्रभाऊ ।।

(अयो० १२५)

देवतालोगों ने भी यही बात कही है—

भरत सरिस को राम सनेही ।
जग जप राम राम जपु जेही ।।

(अयो० २१७.४)

भरत जी के वन में रामजी को मनाने जाने का प्रसङ्ग है—

जड़ चेतन जग जीव घनेरे ।
जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे ।।
ते सब भये परम पद योगू ।
भरत दरश मेंटे भव रोगू ।।

(अयो० ३१६.१)

रामजी के संसर्ग से जङ्गल के रास्ते की सभी वस्तुयें को परम गति की योग्यता मिल गयी थीं और जब वे जङ्गल के रास्ते भरत जी के संसर्ग में आयीं तब सबों को परमगति मिल गयी।

यह बड़ बात भरत के नाहीं ।
सुमिरत जिन्हहीं राम मन माहीं ।।

(अयो० २१६.२)

भरद्वाज मुनि ने भरत जी के लिये कहा—

तात तुम्हार विमल यश गाई ।
पाइहिं लोकहूँ वेद बड़ाई ।।

(अयो० २०६.१)

वेद एवं संसार भी भरत जी की बड़ाई करके प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। जनक जी एवं सुनयना जी चित्रकूट में विचारते हैं—

भरत महा महिमा सुनु रानी ।
जानहिं राम न कहहिं बखानी ।।

(अयो० २८८.१)

यानी रामजी अपने सर्वज्ञ गुण से भरत जी की महिमा जानते तो हैं; परन्तु कहने में भगवान् का सामर्थ्य काम नहीं करता; क्योंकि वह महिमा असीम है। रामजी को मनाने भरत जी को जङ्गल जाते समय इन्द्र के कुचाल पर बृहस्पति ने सचेत किया—**'भरतहिं जानु राम परिछाहीं'** (अयो० २६५.२)।

(15)

भरत जी के प्रति लखन जी राजमद की बात क्यों बोले?

चित्रकूट में रामजी से मिलने जब भरत जी आ रहे हैं तब उनके साथ चतुरङ्गिनी सेना भी थी। लखनलाल इसी को जानकर भड़क उठे कि भरत को राजमद हो गया है। आज उसको समर में सदा के लिये सुला दूँगा। लखनलाल जी ने कहा— **'कब लगि सहौं रहौं मन मारे'** (अयो० २२८.१)। **'...प्रकट करौं रिस पाछिल आजू'** (अयो० २२९.२)। पीछे की बातें जो लक्ष्मण जी के मन में बसी हुई थीं—(१) भरत जी के नाना अश्वपति ने कैकेयी का विवाह दशरथ जी से इसी शर्त पर किया था कि कैकेयी के ही पुत्र राज के उत्तराधिकारी होंगे। इस पर सचेत रहने के लिये ही उन्होंने कुटिल दासी मन्थरा को कैकेयी के साथ अयोध्या भेजा था। (२) कैकेयी अपने पति की सेवा भूल कर केवल वरदान पर केन्द्रस्थ रही। (३) वरदान में भरत को राज परन्तु रामजी को कठिन तपस्वी के आचरण वाला कन्द मूल खाते हुए चौदह वर्ष का वनवास क्यों? लक्ष्मण जी को स्वाभाविक रूप से भी रामजी से अत्यधिक लगाव था। जङ्गल जाते समय शृङ्गवेरपुर में रात में रामजी को सोते समय निषादराज की उपस्थिति पर शक हुआ कि अयोध्या के राजवंश पर यह राज हड़पने हेतु आघात न कर बैठे। उधर निषादराज भी रामजी के अत्यन्त प्रेमी थे और उनके मन में भी आया कि कहीं भरत की तरह लक्ष्मण भी धोखा देकर रामजी पर आघात न कर बैठे। रामजी में असीम प्रेम के कारण ही लक्ष्मण जी भरत जी के बारे में कुपित होकर ही अनिष्ट बातें कह गये थे।

(16)

जटायु जी की भगवत् सेवा

चींटी से ब्रह्मा तक सब नश्वर शरीर वाले हैं। भगवान् की अध्यक्षता में ही प्रकृति विभिन्न स्वभाव एवं विभिन्न देह वाली जीवात्माओं का निर्माण करती है। जब तक भगवान् मिल नहीं जाते तब तक जीव का संसार में जन्मने एवं मरने का क्रम चलता रहता है। जिस देह से भगवान् में प्रेम हो जाये तथा उनकी सेवा का अवसर मिले वही प्रिय देह है। कागभुसुंडी जी ने कहा—

सोई पावन सोई सुभग शरीरा।
जेहि तनु पाय भजिय रघुवीरा।।

(उ० ९५.१)

और भगवान् से विमुख ब्रह्मा का भी शरीर निन्दनीय है—

राम विमुख लह विधि सम देही।
कवि कोविद न प्रशंसहीं तेही।।

(उ० ९५.२)

कौआ के अपने शरीर की सार्थकता बताते हुए उन्होंने गरूड़ जी से कहा—**'यह तन रामभक्ति मोही जामी'** (उ० ९५.२)। **'ताते यह तन मोहि प्रिय'** (उ० ११४)। जब पञ्चवटी के पास जटायु से रामजी की भेंट हुई तब उन्होंने भगवान् को आश्वस्त किया—**'सीतां च रक्षयिष्ये त्वयि याते सलक्षमणः'** (वा०रा०, अर० १४.३३)। जब आप भाई के साथ जङ्गल जायेंगे तब आश्रम में सीता की रक्षा मैं करूँगा। पिता दशरथ से उनकी मित्रता की बात सुनकर भगवान् ने हर्षपूर्वक प्रणाम करते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया—**'जटायुषं तं परिपूज्य राघवो मुदापरिष्वज्य च सन्नतोऽभवत्'** (वा०रा०, अर० १४.३३)। जब रावण सीताजी को चुराकर ले जा रहा था तब जटायु जी ने उससे घोर युद्ध किया तथा पङ्ख कटने पर असहाय हो मरणान्त तक पीड़ा के साथ सोंचने लगे—

मेरे एकउ हाथ न लागे गयो बीति वादि कानन ज्यों, कलपलता दवलागी।

दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो सकल जग साखी।
वरवश हरत निशाचरपति सो, हठि न जानकी राखी।
मरत न मैं रघुवीर विलोक्यो, तापसवेष बनाये।
चाहत चलन प्राण पीवर बिनु, सिय सुधि प्रभुहि सुनाये।
बार बार कर मींजत सिर धुनि, गीद्धराज पछताओ।
तुलसी प्रभु कृपालु तेही अवसर आइ गये दोउ भाई।

(गीतावली, अरण्य १२)

अर्थात् भगवत् कैङ्कर्य के विना ही मानो कल्पलता के समान इस देह को आग में जला दिया हो। दशरथ जी की तरह रामजी के वियोग में शरीर छोड़ते तो संसार गवाह बनता; परन्तु सीताजी को राक्षस से बचाये विना प्राण निकलने पर है। भक्तिप्रेम के कारण अन्तर्यामी भगवान् के दर्शन होते ही उन्होंने कहा—

तं दीन दीनया वाचा सफेन रूधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षीश रामं दशरथात्मजम्।।

(वा०रा०, अर० ६७.१४)

नाथ दशानन यह गति कीन्हा।
सो खल जनकसुता हरि लीन्हा।।

(अर० ३०.१)

गीध की दशा देखकर भगवान् ने लक्ष्मण से कहा पितातुल्य गीधराज मेरे दुर्भाग्य से इस स्थिति में पड़े हैं—

अयन्तु पितुर्वयस्कोमे गृधराजो महाबलः।
शेते विनिहितो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्।।

(वा०रा०, अर० ६७.२७)

और निश्चित ही मेरे ही कारण अब प्राण छोड़ना चाह रहे हैं—

ममाय नूनमर्थेषु यतमानो विहङ्गमः।

राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यक्ष्यति दुस्त्यजान् ।।

(वा०रा०, अर० ६८.२)

इतना कहकर रामजी ने उन्हें गोद में ले लिया—

राघव गीद्ध गोद कर लीन्हौं ।
नयन सरोज सनेह सलिल शुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हौं ।।
सुनहु लखन खगपतिहिं मिले वन मैं पितु मरण न जान्यो ।।
सहि न सक्यो सोऽपि कठिन विधाता बड़पक्ष आज ही भान्यो ।।
बहुविध राम कह्यो तन राखन परम धीर नहीं डोल्यो ।।
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं ।।
जाके नाम मरत मुनि दुर्लभ तुम्हहिं कहाँ पुनि पैहों ।।

(गीतावली, अर० १३)

भक्तों के देह भगवान् को अतिप्रिय है—**'देहो वै स हरिप्रियः'** इसीलिये उनको शरीर रखने के लिए बोलते हैं; परन्तु भगवान् की गोद में किस सौभाग्य से मृत्यु मिल रही है ऐसा सोचकर जटायु जी ने शरीर छोड़ने को ही प्राथमिकता दी। लक्ष्मण जी से रामजी ने कहा मेरे कारण शरीर छोड़ने हेतु मेरी आज्ञा से इन्हें मुक्तात्माओं को प्राप्त होने वाला उत्तम लोक एवं मोक्ष मिले—

अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ।
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकमनुत्तमम् ।।

(वा०रा०, अर० ६८.३०)

(इस श्लोक में रामजी ने खुलेआम यह बताया कि वे मनुष्य मात्र नहीं बल्कि साक्षात् नारायण हैं। अल्पज्ञ लोग वाल्मीकि मुनि के राम को मात्र मर्यादा पुरुष यानी एक आदर्श आदमी मानते हैं। सोचने की बात है कि मोक्ष के लिये आज्ञा देने वाले नारायण के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकते हैं)।

गिद्ध देह तजि धरि हरिरूपा ।
भूषण बहुपटपीत अनूपा ।।
श्यामगात विशालभुज चारी ।
अस्तुति करत नयन भरि वारी ।।

(अर० ३१.१)

भक्त अगर भगवान् के लिये बहुत छोटा कैङ्कर्य भी करता है तब भी भगवान् उसे मेरुपर्वत की तरह विशाल मानते हैं। मांसाहारी गिद्ध को गोद में रखकर रामजी ने मोक्ष दिया तथा चिता पर रख दाह संस्कार किया—

नीके जानत राम हियो हैं ।
प्रणतपाल सेवक कृपालुचित पितु पटहरहि दियो हौं ।।
तिर्यक योनि गीध जनम भरि खाई कुजन्तु जियो हौं ।।
महाराज सुकृति समाज सब उपर आज कियो हौं ।।
श्रवण वचन मुख नामरूप चख राम उछंग लियो हौं ।।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै वियो हौं ।।
नीके जानत राम हियो हैं ।।

(गीतावली, अर० १४)

जटायु जी में त्रुटियाँ थीं—पूर्व जन्म में पाप के कारण नीच योनि में जन्म तथा आजीवन हिंसा से जीविका चलाना।

उनके गुण हैं—दशरथ जी से मित्रता। रामजी से मिलन। रामजी के आश्रम की रक्षा। रामजी के प्रेमपात्र बनना। रामजी के गोद में बैठना। मरते समय रामजी का दर्शन। रामजी से पितातुल्य सम्मान पाना। रामजी द्वारा अन्तिम संस्कार तथा सविधि पिण्ड सहित ब्रह्ममेधसंस्कार प्राप्त करना। इसी लोक में रामजी के सामने परमपद का स्वरूप पाना। लखनलालजी ने दशरथ जी की निन्दा भी की परन्तु जटायु जी के लिये वे भी दुःखी हुए तथा प्रेम से संस्कार में लगे रहे। भागवत में कहा है कि नौ सङ्कर जातियों के समान निकृष्ट जाति में भी यदि भगवद्भक्ति हो जाये तो वह पवित्र बन जाता है—

किरातहूणांध्रपुलिन्दपुक्कसाः
आभीर कङ्का यवनाः स्वसादयः ।
अन्ये च पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः
शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।।

(भा० २.४.१८)

(17.1)

सुन्दर काण्ड के कुछ प्रसङ्ग

जामवन्त के वचन सुहाये । सुनि हनुमान हृदय अति भाये ।।

(सुन्दर चौपाई-1)

प्रश्न है कि जाम्बवान् जी के कौन से सुन्दर वचन थे जिसे सुनकर हनुमान जी प्रसन्न हो गये। जाम्बवान् के सुन्दर वचन का विवरण किष्किन्धा के अन्त में मिलता है—

कहे ऋक्षपति सुनु हनुमाना ।
का चुप साधि रहे बलवाना ।।
पवनतनय बल पवन समाना ।
बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना ।।
कवन सो काज कठिन जगमाहीं ।
जो नहीं तात होय तोहि पाँहि ।।
रामकाज लगि तव अवतारा ।
सुनि कपि भयउ पर्वता कारा ।।

(कि० २९.१-३)

ज्ञानी लोग सम्मुख प्रशंसा से लज्जित होते हैं। इसलिये हनुमान जी ने **'बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना'** पर ध्यान नहीं दिया। जब वे सुने **'रामकाज लगि तव अवतारा'** तब भगवत् कैङ्कर्य हेतु तैयार हो गये। हनुमान जी के लिये अवतार शब्द का प्रयोग हुआ जो देवताओं के लिये प्रयोग होता है। जैसे गरुड़ जी भगवान् के विष्णु रूप में दिव्य पार्षद हैं उसी तरह भगवान् के राम रूप में हनुमान जी दिव्य पार्षद हैं इसका प्रमाण पूर्व में मिल चुका है कि रामजी ने सुदर्शन मन्त्र एवं यन्त्र से घटित मुद्रिका को हनुमान जी को ही दिया। अन्य बन्दर उस मुद्रिका को संभालने में सक्षम नहीं थे और इसका अधिकारी केवल दिव्य पार्षद ही हो सकता है—

पाछे पवनतनय शिर नावा ।
जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।।
परसा शीश सरोरूह पानी ।
कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ।।

(कि० २९.१-३)

अत: जाम्बवान् जी का हनुमान जी को अवतार कहना उचित है। जाम्बवान् जी से हनुमान जी ने पूछा—

'लीलही लाङ्घेउ जलनिधि खारी' ।
सहित सहाय रावनहि मारी ।
आनउ यहाँ त्रिकूट उपारी ।।
'उचित सिखावन दीजिये मोहि' ।

(कि० २९.४-५)

जाम्बवान् जी ने सोचा कि समुद्र को अगर ये पी जायेंगे तो अनेक जीवों की हानि होगी। रावण को मारना एवं त्रिकूट पर्वत के ऊपर बसे लङ्का को उखाड़ कर लाना भी उचित नहीं है; क्योंकि इससे रामजी के यश में कमी होगी कि हनुमान नहीं रहते तब सीताजी की रक्षा होती ही नहीं। इसलिये उन्होंने कहा—

एतना करहु तात तुम्ह जाई ।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई ।।

(कि० २९.६)

कपि सेन सङ्ग संहारि निश्वर राम सीतहि आनि हैं ।

जाम्बवान् जी का यही वचन हनुमान जी को अच्छा लगा, जिससे रामजी के यश एवं मर्यादा की वृद्धि हो और रामजी स्वयं रावण पर विजय प्राप्त करें और तीनों लोक भगवान् का यश गान करे। इस कार्य में हनुमान जी सीताजी का पता लगाने तक का ही कैङ्कर्य करें। जाम्बवान् जी की इसी प्रेरणा से सीताजी भी हनुमान जी को देखकर प्रसन्न हुईं—

बूड़त विरह जलधि हनुमाना ।
भयेउ तात मोकह जलयाना ।।

अजर अमर गुणनिधि सुत होहू ।
सदा करहिं रघुनायक छोहू ।।
(सु० १३.१; १६.२)

अन्य सभी काण्डों से हटकर मानस के सुन्दर काण्ड का प्रारम्भ मङ्गलाचरण के बाद किसी दोहा या सोरठा से नहीं हुआ है। दोहा या सोरठा विराम का सूचक है। इसका तात्पर्य है कि किष्किन्धा के अन्तिम प्रकरण जाम्बवान् हनुमान संवाद का विराम नहीं हुआ है और यह आगे मैनाक के प्रकरण तक चला है। हनुमान जी ने मैनाक के विश्राम करने के अनुरोध को ठुकरा दिया है। रामजी के कैङ्कर्य की उद्देश्य पूर्ति तक हनुमान जी को सुख चैन कहाँ है।

●

(17.2)

तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अङ्कित अति सुन्दर ।।
चकित चितब मुदरी पहिचानी । हर्ष विषाद हृदय अकुलानी ।।
जीति को सकय अजय रघुराई । माया ते असि रचि नहीं जाई ।।
(सुन्दर 12.1-2)

लङ्का में अशोक वाटिका में हनुमान जी ने चुपके से अशोक वृक्ष के ऊपर से रामजी ने जो अङ्गूठी उन्हें दी थी, उसे वृक्ष के नीचे बैठी सीताजी के पास गिरा दी। अङ्गूठी देखकर सीताजी को आश्चर्य हुआ। वे प्रसन्न भी हुई और दु:खी भी। प्रसन्न होने का कारण था कि वह रामजी की अङ्गूठी थी। चक्राङ्कित होने के साथ-साथ उस पर राम नाम भी अङ्कित था। रामजी वैष्णव ईक्ष्वाकु कुल के थे, जिनके यहाँ वैकुण्ठ से साक्षात् रङ्गनाथ भगवान् साकेत नगरी के साथ आये तथा उनके कुलदेवता बनकर रहे। त्रिपादविभूति में अयोध्या नाम की एक पुरी है जहाँ भगवान् श्रीमन्नारायण राम रूप से सीता जी के साथ विराजते हैं—

तत्र अयोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरि:...।
कृतावतारो श्रीराम ह्यनया कलिभूतया ।।
(पद्मपुराण)

वही भगवान् राम के रूप में अपनी अयोध्या नगरी के साथ भूलोक पर अवतार लेकर आते हैं— **'श्रीरङ्गाख्यं परंधाम मममानिनि भूतले'** (पद्मपुराण)। वैष्णवों की सभी वस्तुयें चक्राङ्कित रहती हैं— **'धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देव: रक्षां करिष्यति'**। ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है—

सूर्यादीनां मुनिभिरूदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणाम् ।
स्नानैर्दानैर्हवन वलिभिस्तेऽत्र तुष्यन्ति यस्यात् ।।
(पुरा)

अर्थात् सूर्यादि ग्रहों के शमन के लिये अङ्गूठी पहनना, दान हवन आदि करना लाभदायक होता है। गर्ग ने मनुष्यों को शशियन्त्र धारण करने को लिखा है। सभी तरह के ग्रह के प्रभाव को शान्त करने के लिये सुदर्शन यन्त्र बताया है जो अङ्गूठी आदि पर अङ्कित रहते हैं—

सौदर्शनं महायन्त्रं घटितं चाङ्गुलीयकम् ।
धारयैन मनेनैव मृत्यु: नश्यति असंशयम् ।। (पुरा)

रामजी की अङ्गूठी पर भी सुदर्शन जी अङ्कित थे। सीताजी दु:खी इसलिये होती हैं कि कहीं किसी राक्षसी माया से अङ्गूठी बनाकर हमें ठगा तो नहीं जा रहा है। पुन: सोचती हैं कि यह दिव्य सुदर्शनाङ्कित अङ्गूठी माया से कभी नहीं बन सकती। अङ्गूठी के बारे में रामायणियों के अपने अपने विचार हैं। कुछ कहते हैं कि यह अङ्गूठी जानकी जी की थी जो गङ्गा पार करते समय निषादराज को देने के

लिये उन्होंने रामजी को दिया था—**'मणि मुंदरी तेही दीन्ह उतारी'** (अयो० १०१.२) और जब निषाद ने उसे स्वीकार नहीं किया तब वह भगवान् के पास रह गयी, जो उन्होंने हनुमान जी को सीताजी के लिये थाती एवं हनुमान जी की रामदूत की विश्वसनीयता को प्रमाणित करने हेतु भेजा था; परन्तु इस विचार का अन्यत्र प्रमाण नहीं मिलता। एक और अधिक युक्तियुक्त विचार है कि यह अङ्गूठी रामजी की थी। ऐसी परम्परा है कि विवाह के समय कन्या वर को एक आभूषण देती है जिसे वह जीवन भर धारण करता है तथा उसी तरह वर के दिये हुए आभूषण को कन्या जीवन भर धारण करती है। रामजी को यह अङ्गूठी सीताजी की तरफ से जनकपुर में मिली थी। जब वे वन के लिये तपस्वी के वेष में प्रस्थान किये तब सीताजी भी उनके साथ आईं और सीताजी के सुहाग के प्रतीक उस अङ्गूठी को कैकेयी भी नहीं उतरवा सकी थी। सुन्दर काण्ड को सुन्दर बनाने में इस अङ्गूठी का योगदान है। यह जनक जी के प्रेम का प्रतीक है तथा रामनाम एवं सुदर्शन यन्त्र-मन्त्र से बनी हुई है। इस अङ्गूठी से हनुमान जी पर सीताजी को विश्वास हुआ और उनका शोक दूर हुआ।

●

(18)

शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥ (लङ्का 1.4)

कोई वैष्णव शिव से द्रोह या दुश्मनी नहीं रखता। गृहस्थ विवाहादि में ढोल-ढाक आदि सब की पूजा करते हैं जो लौकिक रीति का पालन है। द्रोह दुश्मनी बदला लेने की भावना से होती है। सहस्रार्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि का शिर काट डाला था इसलिये परशुराम क्षत्रियकुल के द्रोही हो गये थे—**'विश्व विदित क्षत्रियकुल द्रोही'** (बा० २७१.३)। दण्डकारण्य में रामजी ने मुनियों के द्रोही राक्षसों के अन्त की प्रतिज्ञा ली थी—**'जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही'** (अरण्य १२.१)। शिवजी को वैष्णवों में अग्रगण्य कहा गया है—**'वैष्णवानां यथा शम्भुः'** (भा० १२.१३.१६)। वैष्णवगण शिवजी से द्रोह क्यों करेंगे। शिवभक्त शैव ही वैष्णवों पर आघात करते रहे हैं। दण्डकारण्य के शिवभक्त राक्षस ही मुनियों पर अत्याचार करते थे। शिवभक्त हिरण्य-कशिपु ने ही विष्णु भक्ति के कारण प्रह्लाद के अन्त का सब प्रयास किया। शिवजी ने स्वयं ही अपने भक्त बाणासुर के पक्ष से भगवान् कृष्ण से भयङ्कर युद्ध में उन पर ब्रह्मास्त्र तक का प्रयोग किया; परन्तु भगवान् ने उसका काट ब्रह्मास्त्र से ही कर दिया—

बाणार्थे भगवान रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः।
आरूह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः॥
ब्रह्मास्त्रस्य तु ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्।
(भा० १०.६३.६, १३)

पारमार्थिक गति तो भगवान् में अनन्यता से ही मिलती है; क्योंकि भगवान् को छोड़कर सभी नश्वर हैं—**'आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन** (गी० ८.१६)। अर्थात् ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जन्म तथा मुत्यु प्राप्त करते हैं। **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गी० ९.२१)। पुण्य घट जाने पर स्वर्ग से मृत्युलोक में आ जाते हैं। भगवान् को छोड़कर अन्य सबकी पूजा से सीमित लाभ मिलता है। इसलिये भगवान् में अनन्यता अर्थात् पूर्णप्रेम से लगा रहने को कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गी० ९.२२)

भगवान् ने कहा कि केवल मुझमें भक्ति करने वाले की सभी कुशलता का मैं निर्वाह करता हूँ। **'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न च ईज्यया'** (गी० ११.५३) अर्थात् केवल वेद पढ़ने, तपस्या, दान तथा पूजा से मैं नहीं मिलता।

'मय्यनन्य भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्' ।
विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेव विश्वतो मुखम् ।
भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरपि पारये ।।
(भागवत ३.२५.२२, ४०)

जो संसार का सबकुछ छोड़कर मेरी निश्चलभाव से भक्ति करता है उसे मैं मृत्यु के पार ले जाता हूँ अर्थात् परमपद में रखता हूँ।

रामही भजहि तात शिवधाता ।
नर पामर कर केतिक बाता ।।
(उ० १०५.२)

कागभुसुण्डी जी के पूर्वजन्म के गुरु ने उन्हें उपदेश दिया था कि शिव स्वयं रामजी को ही भजते हैं। ब्रह्मसंहिता में शिवजी ने राजा भद्रसेन से स्वयं कहा है कि मैं नारायण का परतन्त्र हूँ। मुक्ति दाता मैं नहीं हूँ इसके अधिकारी स्वयं नारायण ही हैं—

नाहं कैवल्यदो राजन् परतन्त्र स्वभावतः ।
स्वतन्त्र सर्व भूतात्मा परमात्मा रमापतिः ।।

चातक को जैसे स्वाति की बूँदे ही प्रिय होती है वैसे ही भगवान् में चातक जैसी अनन्यता से ही कल्याण होता है—

लोचन चातक जिन कर राखे ।
रहहिं सदा जलधर अभिलाषे ।।
(अयो० २२७.३)

चातक रटनि घटे घटि जाई ।
बढ़े राम पद प्रीति भलाई ।।
(अयो० २०४.२)

गंगा यमुना सिन्धु जल सबै सदा भरपूर ।
तुलसी चातक के मते बिन स्वाति सब धूर ।
रटत रटत रसना लटी तृषा सुखा गे गात ।
तुलसी चातक भक्त को उपमा देत लजात ।
(दोहावली २८०)

(19)

जौ जनतेउं बन बन्धु बिछोहू । पिता वचन मनतेउ नहीं ओहू ।।
सुत वित नारी भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
....मिलही न जगत सहोदर भ्राता ।। (लङ्का 60.3-4)

मेघनाद की शक्तिबाण लगने से लक्ष्मण जी मूर्छित हैं। हनुमान जी सजीवनी लाने गये हैं। विलम्ब देख भगवान् अधीर हो शोकाकुल वचन कहते हैं। रामजी ने पिता दशरथ की कौन-सी बात नहीं मानने की कही तथा लक्ष्मण कैसे उनके सहोदर भ्राता हुए इस पर रामायणियों के अलग-अलग विचार हैं। वसिष्ठ जी भरत जी से कहते हैं—

अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन ।
(अयो० १७४)

पितहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा ।
करहु तात पितु वचन प्रमाणा ।।
(अयो० १७३.३)

रामजी भी पिता की आज्ञा से वन गये अब यहाँ लक्ष्मण के लिये पिता की बात नहीं मानने की क्यों कहते हैं। रामजी को लक्ष्मण से अत्यन्त प्रेम था। भाई के वियोग के सामने पिता की आज्ञा की अवहेलना का अपयश सहने को तैयार हैं—**'बरू अपयश सहतेउ जगमाही'** (लङ्का ६०.६)। लखन जी का रामजी में प्रेम अयोध्या से वनगमन के समय कहा है—**'सीय कि पिय संग परिहरहिं लखन...**

जियहिं बिनु राम' (अयो० ४९)। रामजी के वनबास देने से कुपित लखनलाल ने पिता का बध करने तक कह दिया—**'अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्'** (पाठान्तर 'कैकेय्यासक्तमानसम्') वा०रा०, अयो० २१.१९।

भरत जी को भी जब माता गुरु मन्त्री राज सम्भालने पर बल देने लगे तब सबों की बात टालते हुए भरत जी ने धर्मयुक्त बात नहीं करने के लिये गुरु वसिष्ठ की निन्दा की—**'विललाप सभा मध्ये जगर्हे च पुरोहितम्'** (वा०रा०, अयो० ८२.१०)। **'राज्यञ्च अहञ्च रामस्य...'** (वा०रा०, अयो० ८२.१२) मैं और यह राज्य सब रामजी का है। शङ्कर जी पार्वती से कह रहे हैं—

जिन कृत महामोह मदपाना।
तिनके बचन करिये नहीं काना।।

(बा० ११४.४)

राजा दशरथ कैकेयी के मोह में थे। दशरथ ने विवाह के समय कैकेयी के पुत्र को राजा बनाने के लिए कह दिया था। जब रामजी युवा हुए तब उनके शील स्वभाव से प्रभावित होकर उनको युवराज बना देना चाहा। पुनः जब कैकेयी के सामने हुए तब पलट गये—

प्रिया प्राण सुत सर्वसमोरे।
परिजन प्रजा सकल बस तोरे।।
'भामिनी रामशपथ सत मोहीं'।
'प्राण जाहीं बरू वचन न जाई'।

(अयो० २५.३-४; २७.२)

'प्रतिज्ञा भी कहते हैं'। कैकेयी पुत्र को राज देना कहकर रामजी को राज देने की तैयारी में झूठे भी बनते हैं। यह सब इसलिये हुआ कि कैकेयी को कोपभवन में जाने का सुन राजा घबरा गये।

सुरपति बसहिं बाहु बल ताके।
नरपति सकल रहहिं रूख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।

(अयो० २४.२)

कुछेक रामायणी कहते हैं—(१) रामजी लखन लाल की वन में आने की बात नहीं मानने को कह रहे हैं—**'...। नाथ दास मैं स्वामी तुम तजहु तो कहाँ बसाय'** (अयो० ७१.२)। (२) सीताजी की बात मान वन में लाने की बात के प्रति रामजी का पश्चाताप बताते हैं। (३) मृगा लाने की सीताजी की बात मान लेने का पश्चाताप करते हैं। (४) एकबार मेघनाथ कौआ बन अयोध्या में रामजी की परीक्षा करने आया था। रामजी उसे पकड़ कर बाँध दिये थे; परन्तु राजा दशरथ के कहने पर छोड़ दिये थे। वही मेघनाद के कारण आज भाई सङ्कट में है। अतः पिता की इस बात का स्मरण कर पश्चाताप करते हैं। (५) इस चौपाई में भाई-भाई के प्रेम की बहुलता प्रकट होती है। लक्ष्मण जी को वन चलने की आज्ञा की प्रत्याशा में रामजी ने उन्हें देह घर सब से तृण के समान नाता तोड़े हुए देखा था—

राम विलोकी बन्धु कर जोड़े।
देह गेह सब तृण सम तोड़े।।

(अयो० ६९.३)

लक्ष्मण जी ने कहा था सोते जागते स्वप्न सब में आपकी सेवा करूँगा—**'अहं सर्वं करिष्यामी जाग्रतः स्वपतश्च ते'** (वा०रा० ३१.२७)। सुमित्रा जी ने भी लक्ष्मण जी को वन जाने की आज्ञा मानने पर कहा था—

तात तुम्हार मातु वैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही।। (अयो० ७३.१)

इसी स्नेह के वश में रामजी पिता वचन छोड़ने की बात कहते हैं। भगवान् का वचन है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४.११)।

सहोदर भाई के प्रसङ्ग में रामायणी कहते हैं कि 'उदर' शब्द हृदय का उपलक्षक है। लक्ष्मण जी

शेष के रूप में सर्वदा भगवान् के साथ रहते हैं। अवतार के समय रामजी ने कौसल्या के हृदय को स्वीकारा तथा लक्ष्मण जी ने सुमित्रा के हृदय को। वन जाते समय सुमित्रा जी ने लक्ष्मण को कहा— **'सृष्टःत्वं वनवासाय.....रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति'** (वा०रा०, अयो० ४०.५)। मैंने तुम्हें राम के साथ जंगल जाने के लिये ही जन्म दिया है। राम की सेवा में आलस नहीं करना। वन में जाने को तैयार लखनलाल को बार-बार सुमित्रा उत्साह से कहती हैं 'जाओ जाओ पुत्र' साथ जाओ। **'सुमित्रा गच्छ गच्छ इति पुनः पुनः उवाच तम्'** (वा०रा०, अयो० ४०.८)। साथ में यह भी कहती हैं—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्।।

(वा०रा०, अयो० ४०.८)

रामजी को पिता मानो जानकी जी को माता तथा जंगल को ही अयोध्या मानो और 'जाओ'।

तात तुम्हार मातु वैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही।।

(मानस, अयो० ७.३.१)

सुमित्रा जी श्रीविष्णुपादाङ्कित पवित्र क्षेत्र गया निवासी राजा की पुत्री थीं—

मगधस्य नृपस्थाय तनया च शुचिस्मिता।
सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी।।

(पद्मपुराण)

सुमित्रा जी इस तत्व को जानती हैं कि रामजी परम पिता हैं जबकि दशरथ जी तो लौकिक पिता हैं—**'...जननि कहत बहुभाँति निहोरे। सिय रघुवर सेवा शुचि ह्वैहों, तो जानिहौं सही सुत मोरे। कीजहु यही विचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे'** (गीतावली अयोध्याकाण्ड ११)। लखनलाल से बहुत आशा करके कहती हैं 'यदि तुम राम सीता की सेवा करके पवित्र होगे तब मैं समझूँगी कि तुम मेरे पुत्र हो। सदा यह विचार में रखना कि रामजी के पास रहना कोई कम पुण्य की बात नहीं है'। हनुमान जी को सजीवन बूटी की पहाड़ लेकर जाते समय भरत जी ने भ्रम से कोई राक्षस समझ बाण मारकर उन्हें अयोध्या में गिरा दिया। हनुमान जी ने उन्हें लक्ष्मण की युद्ध क्षेत्र की मूर्छा से जागने की औषधि ले जाने का उद्देश्य जब बताया तब माता सुमित्रा आदि सब इस समाचार को जाने। सुमित्रा जी प्रारम्भ में पुत्र के लिये दुःखी भी हुई और प्रसन्न भी कि रामजी के काम मेरा पुत्र आया है। पुत्र के लिये शोक एवं शुभ कार्य में युद्धरत अपने पुत्र की भक्ति के लिये बार-बार प्रसन्न भी होती हैं—

सुनि रन घायल लखन पड़े हैं।
स्वामी काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारी लड़े हैं।।
सुत शोक सन्तोष सुमित्रहिं रघुपति भक्ति बरे हैं।।
छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।।

(गीतावली, लङ्का १३)

जब लक्ष्मण जी की मूर्छा टूटने पर लोगों ने उनकी स्थिति पूछी तब उन्होंने कहा घाव तो मेरी छाती में है लेकिन उसकी पीड़ा रामजी को है।

हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरे।
मोहि का बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अर्थ चरचा कीरै।।
शोभा सुख क्षति लाहु भूप कहे केवल कान्ति मोह हीरे।।

(गीतावली, लङ्का० १५)

'मेरी स्थिति सुग्गे की है जो पाठ रटता है उसका अर्थ पाठ पढ़ाने वाला जानता है। हीरे की शोभा से सुख या हानि राजा की होती है हीरा के लिये तो केवल कान्ति एवं मूल्य ही है'।

पुत्रवती युवति जग सोई।
रघुवर भक्ति जासु सुत होई।।

(मानस, अयो० ७४.१)

रामजी के वन जाने के समाचार सुनकर लखन-

लाल की स्थिति जल से बाहर निकाली हुई तड़पती मछली जैसी थी कि रामजी साथ लेंगे या छोड़ देंगे—

समाचार जब लक्ष्मण पाये।
व्याकुल विलखि तुरत उठी धाये।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा।
गहे चरण अति प्रेम अधीरा।।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े।
मीन दीन जनु जल ते काढ़े।।

(अयो० ७१.१)

इसीलिये लखनलाल जी ने अपने स्वरूपानुरूप सुमित्रा जी के हृदय को अपनाया था। पुत्रेष्टि यज्ञ से प्राप्त खीर का भाग कौसल्या के हाथ से ही सुमित्रा को मिला यानी खीर में रामजी एवं लक्ष्मण जी संयुक्त रूप से विराजमान थे इसलिये सहोदर हुए—

बारेहिं ते निज पति हित जानी।
लक्ष्मण रामचरण रति मानी।।

(मानस, बाल १९७.२)

बचपन से ही लक्ष्मण जी रामजी से अनुरक्त थे।

●

(20)

सुत वित नारी ईषणा तीनी। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी।।

(मानस, उ॰ 70.3)

संसार के प्रियतम वस्तु का संग्रह दुःख का कारण है और उसका त्याग ही सुख होता है। सामान्यतया धन सबसे प्रिय है; परन्तु उसमें पन्द्रह दोष पाये जाते हैं। इसके प्रेम के कारण स्त्री, भाई, पिता एवं अन्य से वैरी बना देता है। पाण्डव कौरव का युद्ध धन के लिये हुआ। कृपण ने न किसी को दिया न स्वयं खाया ऐसा कष्टपूर्वक संग्रहित धन की वही दशा होती है जो मधु निकाल लेने के बाद मधुमक्खी की होती है—

न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः दुःखसञ्चितम्।
भुङ्क्ते च तदपि तत् च अन्यो मधुहा इव अर्थ वित् मधु।।
सुखदुःखः उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशीषः।
मधुहा इव अग्रतो भुङ्क्ते यतिः वै गृहमेधिनाम्।।

(भागवत ११.८.१५, १६)

इसीलिये भरद्वाज मुनि ने भरत जी से कहा था—**'तुम कह भरत कलङ्क यह हम सब कर उपदेश'** (अयो० २०८)। अर्थात् जिस राज्य के लिये दशरथ की मृत्यु हुई तथा रामजी का वनवास हुआ भरत ने उसे कलङ्क की टीका कहा।

परलोक गमन में धन, परिवार साथ नहीं जाते किन्तु कर्म साथ साथ जाता है—**देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकः**। जीवों को कर्मानुफल के कारण संसार में घूमते पचते देख भगवान् निर्हेतुक कृपापात्र बनाते तथा मनुष्य देह देते हैं—

कबहुँक करि करुणा नरदेही।
देत ईश विनु हेतु सनेही।।

(उ० ४३.३)

सब कार्य विना फल की कामना के भाव से करने वाला मनुष्य सभी निष्काम रूपी अग्नि में वासनाओं को जलाकर **'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डितं बुधाः'** (गी० ४.१९)। निरञ्जन बनता है तथा भगवान् को प्राप्त कर लेता है तथा भगवत् सेवा छोड़कर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता—

न नाकपृष्ठं न महेन्द्रधिष्णयम्
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिः पुनः अभवं वा मयि
अर्पित आत्म इच्छति मत् विना अन्यत्।।

(भा० ११.१४.१४)

भगवान् कृष्ण उद्धव जी को समझाते हैं–मुझको

समर्पित भक्त इन्द्र का राज्य तथा योगसिद्ध नहीं चाहता। **'मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाने'** (उ० ११८.४) काकभुसुंडी जी गरुड़ जी को बताते हैं कि भक्ति के आकर्षण में मुक्ति को भी ठुकरा देता है।

रमाविलास राम अनुरागी।
तजहि बमन इव नर बड़ भागी।।

(अयो० ३२३.४)

भरत जी की राज से विरक्ति की स्थिति। जब अक्रूर जी धृतराष्ट्र को समझाने हस्तिनापुर गये तब राजा ने कहा कि उनका मन पुत्र के मोह से ग्रस्त है एवं आपकी बात आकाश में चमकने वाली बिजली की तरह मेरे मन में ठहरती नहीं।

नारी दो तरह की होती हैं–गृहलक्ष्मी की तरह सुमित्रा, शैव्या, सुनीति, विदुरानी, मथुरा की यज्ञ-पत्नियाँ कुन्ती आदि तथा कुलटा रूप में राक्षसकुल-विनाशिनी शूर्पणखा, पूतना आदि।

●

(21)

दशरथ जी को मोक्ष नहीं स्वर्ग मिला

स्वायंभुव मनु ने नैमिषारण्य में गौतमी नदी के किनारे द्वादसाक्षर वासुदेव मन्त्र जपते हुए एक हजार वर्ष तपस्या की। जब भगवान् प्रकट हुए तब उन्होंने तीन जन्म में उन्हें अपना पुत्र बनने का वर माँगा—**'पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि च अच्युत'**। रामजी के वन जाने के बाद राजा दशरथ की मृत्यु हो जाती है। भरत जी को ननिहाल से संस्कारादि के लिये बुलाया जाता है तब भरत जी से कैकेयी कहती हैं—

कछुक काज विधि बीचि बिगारेऊ।
भूपति सुरपति पुर पगु धारेऊ।।
जीवन सफल जनमफल पाये।
अन्त अमरपति सदन सिधाये।।

(अयो० १५९.१; १६०.२)

भगवान् पहले जन्म में रघुकुल में रामजी बनकर आये। राजा दशरथ के दो और जन्म बाकी थे इसलिये मोक्ष न मिलकर स्वर्ग मिला। लङ्का युद्ध जीतने के बाद युद्धक्षेत्र में स्वर्ग से दशरथ जी भी रामजी की जीत के उपलक्ष में देवताओं द्वारा प्रस्तुत रामजी का अभिनन्दन देखने आये—

तेहि अवसर दशरथ तंह आये।
तनय विलोकी नयन जल छाये।।
ताते उमा मोक्ष नहीं पायो।
दशरथ भेद भक्ति मन लायो।।

(लङ्का० १११.१, ३)

दशरथ जी ने रामजी को सदा पुत्र की दृष्टि से देखा। मन में पुत्र मोह छाया रहा। कैकेयी से विवाह उसके ही पुत्र को राजा बनाने की शर्त पर किये थे, परन्तु पुनः रामजी से मोहित हो युवराज के अभिषेक की तैयारी कर दिये। कैकेयी के सामने हुए तो **'प्रिया प्राण सुत सर्वस तोरे...'** (अयो० २५.३)। **'दुई के चार माँग किन लेहू'** (२७.१..)। **'देखहु काम स्वभाव प्रभाऊ'** (अयो० २४.२)। राजा की ढुलमुल नीति थी। रामजी में भक्ति के स्थान पर पुत्रमोह बलवान था। रामजी को जंगल भेजने से भी कैकेयी को नहीं रोक सके थे और जंगल में तपस्वी के जीवन में रहने की शर्त लगी थी। यद्यपि भगवान् का अवतार पृथ्वी का भार कम करने के लिये ही हुआ था—**'हरिहौं सकल भूमि गरुआई'** (बा० १८६.४)। परन्तु जंगल का जीवन तो कठिन होता है स्वयं रामजी ने सीताजी को समझाया—

लागहिं अति पहार के पानी।
विपिन विपति नहीं जाई बखानी।।

(अयो० ६२.१)

जिस रामधाम की प्राप्ति के लिये सभी कर्मधर्म के फल त्यागे जाते हैं, किन्तु दशरथ उन सबों को अपनाये रहा। धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति **'रामो विग्रहवान धर्मः'** (वा०रा०, बा०) को छोड़कर सामान्य धर्म को अपनाया। भरत जी से चित्रकूट में स्वयं रामजी ने कहा कि मुझे छोड़कर सामान्य सत्यपालन को राजा दशरथ ने अपनाया—**'राखा राउ सत्य मोहि त्यागा'** (अयो० २६३.३)।

●

(22)

औरों एक गुप्त मत सबहिं कहौं कर जोर ।
शङ्कर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर ।। (मानस, उ॰ 45)

यह प्रसङ्ग रामजी द्वारा अयोध्या में नगरवासियों के वार्तालाप के संदर्भ में उत्तर काण्ड का है। बहुत लोग इससे यह समझ बैठते हैं कि रामजी ने स्वयं कहा है कि मेरी भक्ति शिवजी के भजन से मिलती है यानी रामजी की भक्ति बाँटने वाले शिवजी हैं और जीवन भर **'वं वं हर हर'** करते रह जाते हैं।

वस्तुतथ्य है कि कृपालु भगवान् के करकमलों द्वारा सतत भक्ति का वितरण होता रहता है उसमें कभी भी शिव की अपेक्षा नहीं की जाती है—**'अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो सुरधाम'** (अर० ३२)। **'सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन्हं कंह राम भक्ति निज देहीं'** (उ० १११.३)। **'भक्त शिरोमणि भे प्रहलादू'** (बा० २५.२)। जब शिवजी का अनन्य भक्त घण्टाकर्ण ने उनसे मोक्ष माँगा तब उनहोंने उसे भगवान् के पास जाने को कहा। रामजी की भक्ति मिलने के प्रधान स्रोत हैं—१. सत्सङ्गति, सन्त जन, ३. भगवत् नाम। इनमें शिवजी की आवश्यकता नहीं है।

सत्सङ्गति एवं सन्तजन

भक्ति तात अनुपम सुखमूला ।
मिले जो सन्त होहिं अनुकूला ।।

(अर० १५.२)

नारद जी से अपना रहने का स्थान जब भक्ति पूछती है तब नारद जी उसे **'...निरन्तर वैष्णव-मानसानि'** सतत वैष्णवों के मानस में रहने को कहते हैं। मानस अरण्य काण्ड में लक्ष्मण जी को तत्वज्ञान देते हुए रामजी कहते हैं—

'प्रथमहिं विप्रचरण अतिप्रीति' ।
तेहि कर फल पुनि विषय विरागा ।
तब मम चरण उपज अनुरागा ।।
भक्ति स्वतन्त्र सकल गुणखानी ।
बिनु सत्संग न पावहीं प्राणी ।।

(अर० १५.३-४; उ० ४४.३)

स्वयं रामजी ने अयोध्यावासियों को बताया है।

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं—

मदर्थे धर्मकामार्थान् आचरन् मदपाश्रयः ।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ।।

(भा० ११.११.२४)

अर्थात् जिसके सारे कर्म मेरे लिये ही होते हैं वे निश्चल भक्ति पाते हैं।

इष्टापूर्तेन मामेव यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिः मत्स्मृतिः साधुसेवया ।।
इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यमनन्यभाक् ।
सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दते दृढाम् ।।

(भा० ११.११.४७; ११.१८.४४)

अर्थात् मेरी प्रसन्नता के लिये सावधानी पूर्वक यज्ञादि तथा अपने धर्मानुसार अनन्य भाव से

मुझको भजता है उसे मेरी निश्चल अनन्य भक्ति मिलती है। विचार करने पर स्पष्ट होता है कि इन सभी साधनों को शिवजी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

हनुमान जी ने भी रामजी से भक्ति का वर माँगा— **नाथ भक्ति अति सुखदायिनी।**
देहु कृपा करि प्रभु अनपायनी।।
(सु० ३३.१)

रामजी एवं हनुमान के इस संवाद पर मनन करने से रामजी की भक्ति मिलती है—

यह संबाद जासु उर आवा।
रघुपति चरण भक्ति सोइ पावा।।
(सु० ३३.२)

और भरद्वाज मुनि ने जङ्गल जाते समय रामजी से ही भक्ति का वर माँगा—

अब करि कृपा देहु वर येहु।
निजपद सरसिज सहज सनेहू।।
सुनि मुनि वचन राम मुसकाने।...
(अयो० १०६.४)

अगस्त्य मुनि ने—

अविरल भक्ति विरति सतसंगा।
चरण सरोरूह प्रीति प्रसंगा।।
(अर० १२.६)

भी रामजी से ही भक्ति का वर माँगा। अत्रि मुनि ने कहा—

अब मैं जाना मैं श्री चतुराई।
भजिय तुमहिं सब देव विहाई।।
(अर० ५.४)

सरभङ्ग मुनि सब पुण्य कृत रामजी को देकर भक्ति ले ली—

जोग जज्ञ जप तप मुनि कीन्हा।
प्रभु कह देई भक्ति वर लीन्हा।।
(अर० ७.४)

सुतीक्षण मुनि—

मन वच कर्म रामपद सेवक।
सपनेहु आन भरोस न देवक।।
(अर० ९.१)

रामजी ने शबरी से कहा—

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानौ एक भक्ति कर नाता।।
(अर० ३४.४)

'शं कल्याणं करोतीति शङ्करः सत्सङ्गः' अर्थात् सत्सङ्ग द्वारा ही कल्याण होता है—

'सत्सङ्गति महिमा नहीं गोई'।।
वाल्मीकि नारद घटयोनि।
निज निज मुखन कही निज होनी।।
(बा० २.१-२)

संत एवं सत्सङ्गति की तरह भगवान् का नाम कल्याणकर्त्ता है—**'राम नाम को कल्पतरु...'** (बा० २६)। **रामजपत प्रभु किन्ह प्रसादू। भक्तशिरोमणि भे प्रह्लादू।।** (बा० २५.२)। भक्ति और राम नाम में कोई भेद नहीं है—

वर्षाऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।
रामनाम वर वरणयुग श्रावण भादो मास।।
(बा० १९)

अर्थात् 'रा' एवं 'म' ही सावन भादो महीना हैं। इनकी वर्षा से ही भक्ति रूपी कृषि कार्य चलता है। भगवान् स्वयं उदार हैं—**'ऐसो को उदार जगमाहीं'** (विनयपत्रिका १६२), **'जानत प्रीति रीति रघुराई'** (विनयपत्रिका १६४)।

शङ्कर भजन—यहाँ मध्यमपद लोपी समास है यानी शङ्कर के समान भजन। जैसे शङ्कर दिनरात रामजी को जपते हैं उसी तरह की भक्ति करनी होगी। 'शङ्कर भजन' का अर्थ शिव या शङ्कर का भजन अर्थ समझना भूल है जैसा कि ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है।

दोहा में 'गुप्त मत' का अर्थ है कि लीला अवस्था में रामजी अपना शुद्ध स्वरूप बता रहे हैं जैसा कि शङ्कर जी एक बार पार्वती के साथ वन भ्रमण में मन ही मन सोंच रहे हैं—**'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु'** (बा० ४८)। इसीलिये दोहा में रामजी ने 'गुप्त मत' कहा है। गुप्त मत का एक यह भी भाव है कि सन्त या सन्त सङ्गति विना भगवान् की कृपा नहीं मिलती—**विनु हरि कृपा मिलहीं नहीं सन्ता'** (सु० ६.२)। उक्त दोहा में शङ्कर कल्याणवाचक है तथा यह शिव या महादेव का बोधक नहीं है। हरिवंश प ३ में कहा है—

शङ्करोसि सदा देव। ततः शङ्करतां गतः।।

●

(23)

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा।। (उ॰ 115.1)

भक्ति निरूपण प्रसङ्ग में कागभुसुंडी जी ने गरुड़ जी से यह सिद्धान्त बताया है। भक्ति सती नारी की तरह है जिसे माया रूपी नारी प्रभावित नहीं कर सकती। जानकी जी के सतीत्व के सामने लङ्का की दुष्टा राक्षसियाँ कुछ नहीं कर सकीं। नारी को देखकर कुछ नर लुब्ध हो जाते हैं: परन्तु एक नारी को देखकर दूसरी नारी नहीं लुब्ध होती। इस प्रसङ्ग में बालकाण्ड की चौपाई से कुछ लोग विरोधाभास बताते हैं—

रंगभूमि जब सिय पगुधारी।
देखि रूप मोहै नर नारी।।

(बा० २४७.२)

किसी भी पद का अर्थ देश एवं काल के विचार से किया जाता है यानी संदर्भ पर पहले विचार जाता है। दोनों चौपाइ दो प्रसङ्ग से हैं, अत: दोनों की तुलना भ्रमात्मक है। मोह अनेकार्थक शब्द है। इसका प्रयोग अलग अलग अर्थों में हुआ है। जैसे–१. **'भये मोहवश सब नरनाहा'** (बा० २४७.४)। यहाँ मोह का अर्थ पश्चात्ताप है। २. गरुड़ जी ने रामजी को नागपाश के प्रकरण के बारे में कहा—**'मोहि भयउ अति मोह प्रभुबन्धन रण महँ निरखि'** (उ० ६८)। जो भ्रम या संशय या अज्ञानता का बोधक है कि रामजी भगवान् हैं या कोई साधारण मनुष्य। इस तरह से पुस्तक में 'मोह' के ७४ उदाहरण मानस से दिये गये हैं जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थ के लिये मोह शब्द का प्रयोग हुआ है; परन्तु यहाँ कुछेक ही दिये जा रहे हैं—

(क) अज्ञान वाचक मोह के दृष्टान्त—'जो नहीं होत मोह अति मोही' (उ० ६८.२)। गरुड़ जी ने कागभुसुंडी से कहा। **'तुमही न संशय मोह न माया'** (उ० ६९.२)। **'मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि'** (उ० ६९.३)। **'नृप अभिमान मोह वश किंबा। हरि आनेसि सीता जगदम्बा'** (सु० १९.३)। हनुमान जी रावण को कहते है।

(ख) सांसारिकवस्तु से प्रेम वाचक मोह के दृष्टान्त—'करहिं मोहवश नर अघ नाना' (उ० ४०.२) रामजी ने भाईयों से कहा। **'परिहरि मान मोह मद भजहु कोशलाधीश'** (सु० ३९) विभीषण जी रावण को कहते हैं। **'मोह सकल व्याधिन कर मूला'** (उ० १२०.१५)।

(ग) स्त्री में काम या वासना वाचक मोह के दृष्टान्त—'मोह विपिन कह नारी बसन्ता' (अर० ४३.१)। नारद एवं रामजी संवाद। **'....मुनि मोह सो अचरज भारी'** (बा० १२३.४)। **'मुनि अति विकल मोह अति नाठी'** (बा० १३४.३)। नारद जी का विवाह के लिये आतुर होना।

(घ) भगवान् में अतिशय प्रेम वाचक मोह के दृष्टान्त—'मोह मगन नहीं मति विदेह की। महिमा सिय रघुवीर सनेह की' (अयो० २८५.४)। चित्रकूट

में जनक जी की स्थिति।

(च) भगवान् में अविश्वास वाचक मोह के दृष्टान्त—'यहाँ मोह कर कारण नाहीं' (उ० ७१.४) कागभुसुंडी जी ने गरुड़ जी को आश्वस्त किया कि आप को भगवान् में अविश्वास होने का प्रश्न ही नहीं उठता। **'जब कछु काल करिये सतसंगा'** (उ० ६०.२) शिव जी ने गरुड़ जी को समझाया। **'खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह वश तुम्हरे नाईं** (उ० ५८.१)। शिव जी उमा को रामजी में अविश्वास का स्मरण करा रहे हैं।

(छ) दैवी ईश्वरीय माया वाचक मोह के दृष्टान्त—'शिव विरञ्चि कह मोहै को है वपुरा आन' (उ० ६२)। शिव भवानी संवाद।

(ज) लोभ वाचक मोह के दृष्टान्त—'कौड़ी कारण मोहवश करहिं विप्र गुरु घात' (उ० ९९)।

(झ) दोष वाचक मोह के दृष्टान्त—'जो मतिमन्द विषमवश कामी। प्रभु पर मोह धरहि इमि स्वामी। नौकारूढ़ चलत जग देखा। प्रबल मोहवश आपुन लेखा' (उ० ७२.१ एवं ३)।

(ट) मूर्छा वाचक मोह के दृष्टान्त—'मोह मोहे सकल मंत्रण ते मुख मूंदि'। अहिरावण बन्दरों को मूर्छित कर रामजी एवं लक्ष्मण जी को ले गया।

(ठ) माया कार्य के कारण मोह का दृष्टान्त—'मायाकृत गुण दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका' (उ० ५६.१) कागभुसुंडी के निवास पर्वत के बारे में शिवजी उमा को बता रहे हैं। **'सुख सन्दोह मोह पर माया गुण गोतीत'** (बा० १९९) दशरथ एवं कौसल्या की स्थिति।

(ड) विफलता वाचक मोह का प्रयोग—'प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्राणी' (बा० ११६.१) शिवजी उमा को बता रहे हैं।

(ढ) आनन्द बोधक मोह का प्रयोग—'रमा समेत रमापति मोहे' (बा० ३१६.२) रामजी की बारात देखकर लक्ष्मी नारायण आनन्दित हो गये।

(त) अन्धकार वाचक मोह का प्रयोग—'राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहीं तँह मोह निशा लवलेशा' (बा० ११५.३) शिवजी उमा से कहते हैं।

(द) आश्चर्य वाचक मोह का प्रयोग—संदर्भित चौपाई में **देखी रूप मोहे नर नारी'** में मोह आश्चर्य का बोध कराता है। स्त्री पुरुष सब लोग सीताजी के सौन्दर्य **'जगत् जननी अतुलित छबि भारी'** (बा० २४७.१) से आश्चर्यचकित हो गये।

●

(24)

रघुवंशभूषण चरित जे नर कहहिं सुनहि जे गावहीं।
कलिमल मनोहर धोइ विनु श्रम रामधाम सिधावहीं।।
सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरे।
दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुपति हरे।।

(उ॰ 129, छंद 2)

'रघुवंशभूषण' यहाँ विशेष्य है तथा **'सतपंच चौपाई'** उसका विशेषण है। सतपंच के कई अर्थ किये जाते हैं। सबका भाव एक ही है कि रामजी की लीला के अनेकों प्रसङ्गों में से कुछ एक के भी सतत गान एवं श्रवण तथा मनन अन्त:करण को शुद्ध करता है तथा रामधाम का अधिकारी बनाता है। सतपंच के कुछ एक अर्थ नीचे संग्रहित हैं—

(क) सतपंच का एक विचार—**'अङ्कानाम**

वामतो गतिः' से 'सतपंच' की मात्र हुई ५१०० यानी रामायण के ५१०० चौपाई वाले रामजी के लीलाचरित को लय, सुर ताल में गान करने या श्रवण करने से रामजी काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अभिमान को दूर कर अपने धाम के अधिकारी बना देते हैं। **'रघुपति चरित समास बखाना'** (लङ्का ५९.१) संजीवनी पर्वत ले जाते समय अयोध्या में भरतजी को हनुमान जी ने सङ्क्षेप में रामचरित सुनाया। **'यह सब गुप्त चरित मैं गावा'** (उ० ८८.२) कागभुसुंडी जी ने रामजी की गुप्त माया के बारे में गरुड़ जी को सुनाया। **'व्यास समास स्वमति अनुसारी'** उ० (१२२.१) कहीं सङ्क्षेप तथा कहीं विस्तार से कागभुसुंडी जी ने रामचरित गरुड़ जी को सुनाया।

(ख) 'सतपंच' का एक अर्थ यह है कि रामजी के चरित्र रूपी सत्य को पाँच प्रकार से प्रतिपादित किया गया है—**'व्यास समास स्वमति अनुरूपा'। 'सूझहि रामचरित मणिमानिक। गुप्त प्रकट जंह जो जेहि खानिक'** (बाल कांड बंदना चौ० ४)। यानी रामकथा 'विस्तृत' 'सङ्क्षिप्त' 'यथार्थ भाव से' 'प्रकट' तथा 'गुप्त' वर्णित है। चौपाई कहने से चौपाई के साथ छंद, सोरठा, दोहा आदि मानस के सब तरह के पदों का एकीकृत बोध होता है; क्योंकि सब में चार-चार चरण हैं। मनोहर शब्द का भाव है—**'यह महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा'** (बा० ९.१)।

(ग) 'सतपंच' का एक अन्य अर्थ है कि रामजी के स्वरूप वाले पाँच सात चौपाई को भी हृदयंगम करने से अविद्या माया का नास होता है। रामजी के बाल स्वरूप का कागभुसुंडी जी ने चौपाई तथा दोहा के साथ सात पदों में वर्णन किया है जो उत्तर काण्ड दोहा ७५ के **'मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा'** से लेकर दोहा ७६ के **'रूप राशि नृप अजिर बिहारी। नाचही निज प्रतिबिंब निहारी'** तक है। इसे हृदयंगम करने को कहा है।

पाँच सात चौपाई से अरण्य काण्ड के संत लक्षण वाले भाग दोहा ४४ के **'षट विकार जित अनघ अकामा...'** से लेकर दोहा ४५ के **'गावहिं सुनहिं सदा मन लीला। हेतु रहित परहित रत सीला'** तक हृदयस्थ करने को कहा है।

(घ) 'सतपंच' से एक अन्य अर्थ में सात तथा पाँच का योग बारह माना जाता है। यह रामजी द्वारा अयोध्यावासियों को सम्बोधित किये जाने वाले भाग उत्तर काण्ड दोहा ४२ के **'बड़े भाग मानुष तन पावा'** से लेकर दोहा ४६ तक **'ताकर सुख सो जानइ परानंद संदोह'** तक के मनन से अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा रामधाम मिलता है।

(च) एक अन्य अर्थ में **'मधुकर सरिस सन्त गुण ग्राही'** (बा० ९.३) वाले भाव से समन्वित होने को बताया गया है। इसके अनुसार **'सकल शौच करि जाई नहाये'** (बा० २२६.१) जनकपुर में रामजी एवं लक्ष्मण जी की उपस्थिति से लेकर अयोध्या काण्ड के भरत प्रेम तक के पाँच सौ चौपाइयों को मनन करने को कहा गया है।

(छ) एक अन्य भाव में निम्नाङ्कित चौपाइयों को सतत मनन योग्य बताया गया है—

नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर श्याम।
अंग अंग पर बारिये कोटि कोटि सतकाम।।

(बा० १४६)

नील जलज तनु श्याम काम कोटि शोभा अधिक।
सुनिये तासु गुण ग्राम जासु नाम अघ खग वधिक।।

(कि० ३०)

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा
न मम्ले वनवास दुःखितः।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।

(अयो० २)

नीलाम्बुज श्यामलकोमलांगं सीतासमारोपित वामभागम् ।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
(अयो० ३)

सन्द्रानन्द पयोद सौभग तनुं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
पाणौ वाण सरासनं कटिलसत्तूनीरभारं वहम् ।।
सीतालक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ।
(अर० ५)

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम् ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।।
पाणौ नाराचापं कपि निकर युतं बन्धुना सेव्यमानम् ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।
कोशलेश पदकंज मंजुलौ कोमलाज महेशवन्दितौ ।
जानकी करसरोज ललितौ चिन्तकस्यमनभृंगसंज्ञितौ ।।
(उ० १-२)

(ज) एक अन्य अर्थ में पाँच सात से पैंतीस समझकर उत्तर काण्ड के दोहा ६३ से दोहा ६० तक के सङ्क्षिप्त रामायण की चौपाईयों को मनन कल्याणप्रद बताया है। सुन्दरकाण्ड में दोहा ४१ से ४८ तक विभीषण जी की शरणागति के प्रसङ्ग के पैंतीस चोपाई भी सतपंच समझे जाते हैं।

(झ) एक अन्य विचार से रामजी के अवतार काल से नारदजी की स्तुति पर्यन्त षडमुखी वार्ता छोड़कर सतपंच यानी पाँच सौ चौपाईयों का मनना करना बताया है।

(ट) कागभुसुंडी जी ने रामजी का बालरूप देखा था तथा कौसल्या जी को विश्वरूप का दर्शन रामजी ने दिया था। ये प्रसङ्ग भी सात सात चौपाइयों में वर्णित है। इसे भी 'सत' शब्द द्वारा समझना चाहिये।

(ठ) एक विचार से सतपंच से सात एवं पाँच दो अङ्कों की तरह यानी राम एवं सीता दोनों तत्व के भजन से समझना चाहिये। केवल सीता में प्रेम के कारण रावण मारा गया तथा केवल राम में प्रेम वाली शूर्पनखा अपमानित हुई; परन्तु दोनों को भजने वाले विभीषण राज्याधिकार से सम्मानित हुए।

(ड) उपयुक्त विचारों से यह सिद्ध होता है कि मनोहर चौपाइयों का तात्पर्य मात्र चौपाई ही नहीं छन्द, सोरठा, दोहा, श्लोक सब संयुक्त हैं। मानसकार ने कहा है—

'पुरइन संघ न चारु चौपाई' (बा० ३६.२)

अर्थात् रामायण की चौपाइयाँ सघन पुरइन पत्र हैं तथा छंद, दोहा, सोरठा इत्यादि इसके कमल के फूल हैं। कमलयुक्त पुरइन सुशोभित होता है न कि कमल छोड़कर। अत: सतपंच चौपाई शब्द से दोहा, सोरठा, छंद सब को समझना चाहिये न कि केवल चौपाई को। रामजी के यहाँ जाति, योनि आदि का भेदभाव नहीं है। निषाद, शबरी, जटायु, सुग्रीव, विभीषण सब उनके प्रेमभाजन हुए हैं—

रामहि केवल प्रेम पियारा ।
जान लेउ जो जाननिहारा ।।
(अयो० १३६.१)

श्रीमद्भगवद्गीता अवश्य पढ़े

इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रहीत है। यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्यवाणी है। भगवान् के अव्यक्त रूप से विश्वरूप तक की झाँकी गीता में मिलती है। यह भगवान् के अनन्त कल्याणमय गुणों तथा दिव्य विभूतियों का प्रत्यक्ष दर्शन कराती है। मानव धर्म के मूल तत्त्वों को समझा देने वाला गीता के समान विश्व में दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। यह एक पिण्ड (शरीर) में ही ब्रह्माण्ड की सभी तत्त्वों का दर्शन करा देती है। संसार के विभिन्न कष्टों से पीड़ित मानवों को आनन्दमय सागर में मिला देने की सामर्थ्य एक मात्र गीता में है। ब्रह्मतत्त्व, आत्मतत्त्व ब्रह्म प्राप्ति के साधन भक्ति एवं शरणगति का रहस्य सविस्तर गीता बताती है।

नन्द घर जन्मे कन्हाई जी घर घर बाजे बधाई - (टेक)
दुन्दुभी ताल मृदंग शंख ध्वनि, सैंसरा गा सहनाई जी घर
हल्दी केशर मलि देत परस्पर, गलिअन कीचम चाई जी घर०
गोप गोपी सजि के बालक, घर से चली सब धाई जी घर घर०
गावति गीत मनोहर सुन्दर, देति को लाल बधाई जी घर घर०
लाला लाल नर्म लो जीजो, कीरति कर आदि गाई जी -
घर घर बाजे बधाई

(मनरंजना)

झुलाके ललके यशोदा जी मनरंजना लाला, प्रेम न हृदय से समात एम
मोद शरीर हलरावति बहुविधि आनन्द हृदये अपार एम मन० २
बार बार लै चुम्बति लख मुख, मनहिं मनहिं अगरात एम मन० ३
आगसरा हत सब जसोदा के, मिलि रस बधुजना हिए मनरंजना ४
नन्द राए धन धन्य यशोदा, धन यह ढंग जके भाग एम मन० ५
श्याम सुन्दर के देखन के लगा
जाइ आति मा दुवार एम मनरंजना लाल ६

झांकि छवि देखन राजा महल में, जसोदा जनी रह लाल से
मनरंजना लाला। हम सब जन्म कृष्ण भागनी ये मन०
कमल नयन दोउ सुन्दर राजे, दरसत सब मन हीं मन
गाजे, मुख अरविन्द सुहावन ये मन० २
दरसन लागी आतुर आवे, चितु के नभ भूमि मनजार
जमुना जीवन रस सुन्दर ये मन० ३ कोउ गोपिन लिख के -
लिपा तोरे, कोउ लखि के निज नयन हीं मोरे
कोउ मन मगन झुलात ये ४ । मैं हीं ना राजा जी के द्वार
अधिक को लाहल ठेर तन तोरे, नाहिं कोउ लख के
झुलात ये मनरंजना लाला ५ ।
आगे ५८८ — २९९ में देखो

રાજા પુરોહિત બુલાવે, લગન શોધવાવે -
ગરહ દિખવાવે, સમય સુભ જાહેર કરકે ૧
પંડિત સમય અનુસારા, લગન કો સુધારા -
ગરહ કો વિચારા, બાલક વા આનંદ કરકે ૨
ઇન કા કે મુલના સત રહે, જદ રસ લે પિલ રહે -
સોમા કો બચ રહે, વિખ માં વિખ પી કરકે ૩
બાલક દુરજન ઘાલક, ગોકુલ જ પાલક -
ધર્મ સુ ચાલક, ગીતા સુનાકરકે ૪
અવગુન કોઇ કરે હે, સરવન સંગ લૌ હે
માખન કો ચુરે હે, ગોપીન ઘર ઘુસ કરકે ૫
કતહું ગોપિન ઘર જૈ હે, કતહું પકરે હે -
સોના મન સે હે, મખન દિવસ કરકે ૬
દધિ ગાગર ફોરે હે, માખન લે પારે હે
જલ નીચેં [illegible] રહે, સો અરજુન ઉબારકે ૭
પનિ વાર પર જમ ઘાટ લાગ રહે, ગાયન લો કહે રહે
ગોપિન અજો સર રહે, ગાજ [illegible] Processed by FREE
નાગ ... ગાજ રહે, સો ફાટ નાં ... , ... પરખો હે, નાચ નાગ
નાગ ઉપર જો હે નાગ ન માં વન કરકે
... રપતિ કે ભીમ ગાજે, અપને પુજવાકે, ઐં જત સવરવાકે
ગોવરધન બનાકરકે ૯
હોગા સવન કરવાને, નદા ડુસે ન્યારા; જહાં ઓ વિચારા
સુનો સાજન મન હરકે ૧૦

गृहारम्भमुहूर्त्त

१. वैशाख-शुक्ल-एकादशी शनिवार ०६-०५-२०१७ को रात्रि में १०:०० से ११:२९ तक
२. वैशाख-शुक्ल-त्रयोदशी सोमवार ०८-०५-२०१७ को रात्रि में ०७:०० से ०८:१५ तक

●

गृह-प्रवेशमुहूर्त्त

१. वैशाख-शुक्ल-एकादशी शनिवार ०६-०५-२०१७ को दिन में ०८:२१ से १०:०५ तक
पुन: रात्रि में ०२:४८ से ०४:१५ तक
२. वैशाख-शुक्ल-त्रयोदशी सोमवार ०८-०५-२०१७ को दिन में १२:१६ से ०२:२९ तक
पुन: सायं ०७:०० से ०९:१६ तक
३. ज्येष्ठ-कृष्ण-एकादशी सोमवार २२-०५-२०१७ को सायं ०६:०३ से ०८:२० तक
४. ज्येष्ठ-शुक्ल-नवमी शनिवार ०३-०६-२०१७ को दिन में १०:३२ से १२:४५ तक
पुन: रात्रि में ०७:३२ से ०७:३७ तक
५. ज्येष्ठ-शुक्ल-एकादशी सोमवार ०५-०६-२०१७ को दिन में ११:०० से १२:३७ तक

●

द्विरागमनमुहूर्त्त

उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण, ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

१. वैशाख-कृष्ण-षष्ठी-सोमवार १७-०४-२०१७ को दिन में ०९:०५ से ११:१५ तक।

उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण के लिए—

२. वैशाख-कृष्ण-अष्टमी-बुधवार १९-०४-२०१७ को प्रात: ०५:४० से ०६:५९ तक।

उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण, पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

३. वैशाख-कृष्ण-दशमी-शुक्रवार २१-०४-२०१७ को दिन में १०:०३ से ११:०२ तक।

उत्तर से दक्षिण, वायु से अग्नि कोण के लिए—

४. वैशाख-शुक्ल-त्रयोदशी-सोमवार ०८-०५-२०१७ को दिन में ०७:४४ से ०९:५७ तक।

उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

५. वैशाख-शुक्ल-पूर्णिमा-बुधवार १०-०५-२०१७ को दिन में ०१:०४ से ०१:५० तक।
६. ज्येष्ठ-कृष्ण-द्वितीया-शुक्रवार १२-०५-२०१७ को दिन में ०७:३० से ०९:०४३ तक।

●

श्रीवैष्णव व्रत निर्णय-तालिका (वर्ष २०१७-१८)

क्रम.	मास	पक्ष	तिथि	दिन	दिनांक	व्रत नाम
1.	चैत्र	शुक्ल	11	शुक्रवार	07-04-2017	कामदा
2.	वैशाख	कृष्ण	11	शनिवार	22-04-2017	बरुथिनी
3.	वैशाख	शुक्ल	11	शनिवार	06-05-2017	मोहिनी
4.	ज्येष्ठ	कृष्ण	11	सोमवार	22-05-2017	अचला
5	ज्येष्ठ	शुक्ल	11	सोमवार	05-06-2017	निर्जला
6.	आषाढ़	कृष्ण	11	मङ्गलवार	20-06-2017	योगिनी
7.	आषाढ़	शुक्ल	11	मङ्गलवार	04-07-2017	श्री विष्णुशयनी
8.	श्रावण	कृष्ण	12	गुरुवार	20-07-2017	कामदा
9.	श्रावण	शुक्ल	11	गुरुवार	03-08-2017	पुत्रदा
10.	भाद्रपद	कृष्ण	11	शुक्रवार	18-08-2017	जया
11.	भाद्रपद	शुक्ल	11	शनिवार	02-09-2017	पद्मा
12.	आश्विन	कृष्ण	11	शनिवार	16-09-2017	इन्दिरा
13.	आश्विन	शुक्ल	11	रविवार	01-10-2017	पापाङ्कुशा
14.	कार्त्तिक	कृष्ण	11	रविवार	15-10-2017	रम्भा
15.	कार्त्तिक	शुक्ल	11	मङ्गलवार	31-10-2017	प्रबोधिनी
16.	अगहन	कृष्ण	11	मङ्गलवार	14-11-2017	उत्पन्ना
17.	अगहन	शुक्ल	12	गुरुवार	30-11-2017	मोक्षदा
18.	पौष	कृष्ण	12	गुरुवार	14-12-2017	सफला
19.	पौष	शुक्ल	11	शुक्रवार	29-12-2017	पुत्रदा
20.	माघ	कृष्ण	11	शुक्रवार	12-01-2018	षट्तिला
21.	माघ	शुक्ल	12	रविवार	28-01-2018	जया
22.	फाल्गुन	कृष्ण	11	रविवार	11-02-2018	विजया
23.	फाल्गुन	शुक्ल	11	सोमवार	26-02-2018	आमलकी
24.	चैत्र	कृष्ण	11	मङ्गलवार	13-03-2018	पापमोचनी

1.	चैत्र	शुक्ल	9	बुधवार	05-04-2017	श्रीराम नवमी व्रत
2.	वैशाख	शुक्ल	5	सोमवार	01-05-2017	श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती
3.	वैशाख	शुक्ल	14	मङ्गलवार	09-05-2017	श्रीनृसिंह चतुर्दशी
4.	भाद्रपद	कृष्ण	9	बुधवार	16-08-2017	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी (शुद्ध रोहिणी होने से)
5.	भाद्रपद	शुक्ल	12	रविवार	02-09-2017	श्रीवामन द्वादशी
6.	फाल्गुन	शुक्ल	13	बुधवार	28-02-2018	श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जयन्ती